जैन भारती

जनवरी 2013 • वर्ष 61 • अंक 1 • वार्षिक रु. 200.00

शुभ भविष्य है सामने

स्व. बादरमलजी बाफना

Reid & Taylor Exclusive Store

Mohan Moti

568, 3rd Stage, 4th Block
80 Feet Road, Basaveshwarnagar, **BANGALORE** 560079
Ph. : + 91 8023224688

4, Kamanhalli Main Road, 3rd Block
HRBR Layout, BANGALORE 560043

MOHAN MOTI ANNEXE

28, Panchratna Plaza, (Opp. Poonam Plaza)
D.S. Lane, Chickpet, BANGALORE-53
Ph. : + 91 8022373003

MOHAN MOTI DISTRIBUTORS

12, Poonam Plaza
No. 5, D.S. Lane, Chickpet, **BANGALORE-53**
Ph. : + 91 8022255680
E-mohanmoti@gmail.com / www.mohanmoti.co.cc

M.B. Bafna 9341268415, **Mahendra M. Bafna** 9342232270

जैन भारती

वर्ष 61 • जनवरी, 2013 • अंक 1

1. सम्पादकीय 9
2. मंगल सन्देश नव वर्ष 2013 11
3. समय का अंकन 12
4. श्रद्धा-प्रणति 14
5. तेरा तुझको करते अर्पण 15
6. आचार्य तुलसी जन्म शताब्दी समारोह 16
7. आचार्य तुलसी : ज्योतिर्मय साधक 18
8. आभावलय की आभा 19
9. तृप्ति की सौगात 20
10. उजालों के आस-पास 21
11. लक्ष्य प्राप्ति की दिशा में प्रस्थान 22
12. संस्कार, जो मेरी मां ने दिए 24
13. मेरी आकांक्षा : मानवता की सेवा 26
14. ऐसे मिला मुझे अहिंसा का प्रशिक्षण 31
15. उद्देश्यपूर्ण जीवन का पड़ाव 33
16. सफर आधी शताब्दी का 35
17. आचार्य पद का विसर्जन 37
18. विचार दीर्घा में आचार्यश्री तुलसी 40
19. अपूर्व रात : विलक्षण बात 45
20. जैन धर्म : पहचान के कुछ घटक 47
21. जैन जीवनशैली 49
22. तलाश आदमी की 52
23. अभिमान है आपदाओं का उत्स 53
24. समाज-विकास का आधार : विधायक भाव 55
25. संसद खड़ी है जनता के सामने 57
26. चारित्रिक मूल्यों के प्रति अनास्था क्यों? 59
27. संबोधन अलंकरण की सूची 60

सम्पादक
डॉ. शान्ता जैन

प्रकाशकीय कार्यालय
जैन श्वेताम्बर तेरापंथी महासभा,
तेरापंथ भवन, महावीर चौक, गंगाशहर,
बीकानेर 334401

❑

प्रधान कार्यालय
जैन श्वेताम्बर तेरापंथी महासभा
3, पोर्चुगीज चर्च स्ट्रीट, कोलकाता 700001

❑

सदस्यता शुल्क
वार्षिक 200/- रुपये, त्रैवार्षिक 500/- रुपये,
दसवर्षीय 1500/- रुपये

•

आवरण
गौरीशंकर

ACHARYA ... GYANMANDIR

'संयम तो एक निरन्तर की साधना है। घड़ी या दो-घड़ी का कोई तात्पर्य नहीं। एक क्षण का भी प्रमाद किए बिना, लक्ष्य-प्राप्ति तक अविश्रान्त उसी मार्ग पर आगे बढ़ना आवश्यक है। यदि दो घड़ी की शुद्ध साधना से ही केवलज्ञान प्राप्त किया जा सकता हो, तो इतने समय के लिए तो मैं श्वास रोक कर भी शुद्ध ध्यान कर सकता हूं। आचार्य जम्बू के पश्चात्वर्ती प्रभव और शय्यम्भव आदि आचार्यों को केवलज्ञान प्राप्त नहीं हुआ, तो क्या उन्होंने दो घड़ी के लिए भी शुद्ध संयम नहीं पाला? भगवान् महावीर के चौदह सहस्र शिष्यों में से केवल सात सौ ही केवली हुए, तो क्या अवशिष्ट साधुओं ने दो घड़ी के लिए भी शुद्ध संयम की आराधना नहीं की? स्वयं भगवान् महावीर भी संयम ग्रहण करने के पश्चात् लगभग साढ़े बारह वर्षों तक छद्मस्थ रहे। क्या आप कह सकते हैं कि उस अवधि में दो घड़ी के लिए भी उन्होंने शुद्ध ध्यान नहीं किया और शुद्ध चारित्र का निर्वहन नहीं किया? यों तो दो घड़ी क्यों, इससे कम समय में भी मरुदेवी और भरत आदि ने केवलज्ञान प्राप्त किया है, परन्तु देशोन करोड़ पूर्व तक शुद्ध संयम पालने पर भी किसी-किसी को केवलज्ञान नहीं होता। इसीलिए शुद्ध संयम जीवनभर के लिए एक साधना है, चाहे उससे केवलज्ञान प्राप्त हो अथवा न हो।'

— आचार्य भिक्षु

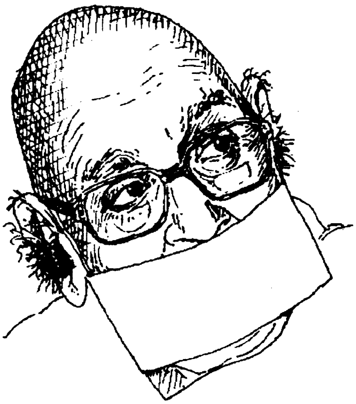

आचार्य की संपदाएं

हर धर्मसंघ की अपनी व्यवस्था और अपना विधान होता है। लौकिक व्यवस्थाओं और विधानों का उन पर प्रभाव हो सकता है, पर लोकधर्म और अध्यात्म-धर्म का गणित एक नहीं है। लौकिक मान्यताएं बनती और बदलती रहती हैं। अध्यात्म धर्म का स्थायी मूल्य होता है। अध्यात्म को साधने की प्रक्रिया में अंतर संभव है, किंतु उसका स्वरूप शाश्वत है। उस पर न तो समय की धूल जम सकती है और न उसे परिस्थितियों की आंधी उड़ा सकती है। धर्मसंघ के एक महत्त्वपूर्ण व्यक्तित्व हैं आचार्य। आचार्य के लिए गणी शब्द का प्रयोग भी होता है। वैसे आचार्य और गणी के कार्यक्षेत्र भिन्न-भिन्न होते हैं। आचार्य का दायित्व अर्थ की वाचना देना है, जबकि गणी का संबंध संघीय व्यवस्थाओं के साथ है। आचार्य गण की सब चिंताओं से मुक्त रहकर आगमों की अर्थयात्रा से संपृक्त रहते थे। कालांतर में ये व्यवस्थाएं शिथिल हो गईं। व्यवस्था का सूत्र सशक्त हाथों से फिसलकर आम आदमी के हाथ में आ गया। ऐसी स्थिति में आचार्य को एक से अधिक काम अपने हिस्से में रखने पड़े।

संपदा साक्षी बनती है व्यक्तित्व की

तेरापंथ धर्मसंघ आचार्य केंद्रित है। एक आचार्य का नेतृत्व पूरे धर्मसंघ को मान्य होता है। गणी, गणावच्छेदक आदि पदों की व्यवस्थाएं अमान्य नहीं हैं, पर वे सब आचार्यपद में समा जाती है। यह आचार्य भिक्षु का अवदान है। उन्होंने तत्कालीन धर्मसंघों की अंतरंग स्थिति का बारीकी से अध्ययन किया। पदों को लेकर होनेवाली खींचातानी से वे अपरिचित नहीं रहे। उन्होंने सारे दायित्व आचार्य को सौंप दिए। उनकी दूरदर्शिता का सुफल है तेरापंथ का सुदृढ़ संगठन। संगठन को मजबूती और नया उन्मेष देने के लिए आचार्य का अनेक संपदाओं से संपन्न होना आवश्यक है। आचार्य में यह क्षमता न हो तो संघ का विकास नहीं हो सकता। जिस संघ में सब कुछ आचार्य पर ही निर्भर हो, वहां यह अपेक्षा और अधिक बढ़ जाती हैं।

स्थानांग सूत्र में आचार्य की आठ संपदाओं का उल्लेख है। दशाश्रुतस्कंध में इनका विस्तृत वर्णन उपलब्ध है। वहां प्रत्येक संपदा के चार-चार प्रकार बतलाए हैं। प्रवचनसारोद्धार में कहीं शब्दभेद और कहीं अर्थभेद के साथ इन संपदाओं का उल्लेख मिलता है। स्थानांग की वृत्ति में भी इनके भेदोपभेदों की चर्चा है। मूलतः आठ संपदाओं का स्वरूप इस प्रकार है—

1. आचार संपदा : संयम की समृद्धि
2. श्रुत संपदा : श्रुत शास्त्रीय ज्ञान की समृद्धि
3. शरीर संपदा : शारीरिक सौन्दर्य
4. वचन संपदा : वचन कौशल
5. वाचना संपदा : अध्यापन पटुता
6. मति संपदा : बुद्धि कौशल
7. प्रयोग संपदा : वाद कौशल
8. संग्रह परिज्ञा : संघ व्यवस्था में निपुणता

इन संपदाओं का संबंध बाह्य और अंतरंग-व्यक्तित्व के दोनों पक्षों से है। व्यक्तित्व संपन्नता के साथ-साथ संघीय व्यवस्थाओं के समायोजन में इनकी महत्त्वपूर्ण भूमिका है।

— आचार्य तुलसी

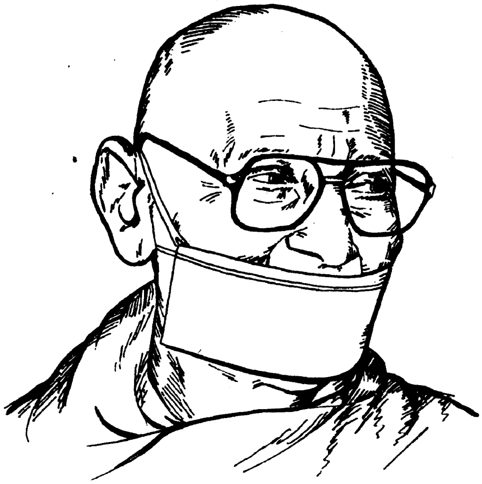

आदमी को नई और पुरानी दोनों अवस्थाओं का अनुभव करना चाहिए। कोरा नया भी नहीं और कोरा पुराना भी नहीं। नया होना जरूरी है। रात बीतती है नया दिन आता है, किंतु कोरा नया हो, बदलता रहे, ध्रुव न हो तो फिर आधारहीन हो जाता है। ध्रुव की पृष्ठभूमि पर बदले, तब तो अच्छी बात है। पृष्ठभूमि न हो, आधार न हो और कोरा बदलाव होता रहे तब ऐसी स्थिति बनती है कि अस्तित्व ही नहीं रहता। हवा गतिशील है, बदलती रहती है, पर इन दिनों हमने देखा हिमपात के समय हवा ठिठुराने वाली बन गई है। लगभग दो महीने बाद हम देखेंगे कि हवा इतनी गर्म हो जाएगी कि लोग उससे बचाव का प्रबंध करने लग जाएंगे। लू चलने लगेगी। कारण? हवा का कोई ध्रुव नहीं है। कोरी गति है, बदलाव है, परिवर्तन है। जब ध्रुव नहीं होता, शाश्वत की पृष्ठभूमि नहीं होती तो कोरा बदलाव भी लोगों के लिए कभी-कभी ताप और संताप का हेतु बन जाता है।

हम बदलें, परिवर्तन करें, यह बहुत आवश्यक है। आचार्य तुलसी ने यह मंत्र दिया था कि बदलना जरूरी है। पर उन्होंने ध्रुव को कभी नहीं छोड़ा। हमारा ध्रुव क्या है? परिवर्तन की पृष्ठभूमि में तीन बातें हैं—आचार, सिद्धांत और अनुशासन/मर्यादा। ये तीन हमारे ध्रुव हैं। इन तीनों को छोड़कर जहां कोई बदलाव या परिवर्तन होता है, वह श्रेयस्कर नहीं होता, हितकर नहीं होता, कल्याणकारी नहीं होता।

—आचार्य महाप्रज्ञ

आभार और शुभकामना

'जैन भारती मासिक पत्रिका' जैन श्वेताम्बर तेरापंथी महासभा का मुखपत्र है। प्रारम्भ से लेकर आज तक विद्वान् सम्पादकों ने अपनी कलम से इस पत्रिका को प्रभावी पत्रिका बनाने में अपने श्रम एवं समय का नियोजन किया है। श्री शुभूजीं पटवा ने सन् 1999 से लेकर सन् 2012 तक सम्पादकीय दायित्व का कुशलतापूर्वक निर्वहन किया है। श्री शुभूजी पटवा कलम के धनी हैं, उर्वर चिंतन एवं सकारात्मक सोच से उनके सम्पादकीय में प्रकाशित लेख जैन भारती के पाठकों के लिए अमूल्य दस्तावेज बन गए हैं। उनके सतत सहयोग के लिए आभार।

नववर्ष 2013 की जनवरी से मुमुक्षु डॉ. शान्ताजी, जैन भारती के सम्पादकीय दायित्व का निर्वहन करने जा रही हैं। बधाई-बधाई, बधाई! प्रतिभा की धनी बहिन मुमुक्षु डॉ. शान्ताजी जैन को जैन भारती के सम्पादक होने का सौभाग्य पूर्व में भी 11 वर्षों तक प्राप्त हुआ है, उन्होंने अपनी लेखनी से अपने सम-सामयिक विचारों से पाठकों को हमेशा प्रभावित किया है। कुशल लेखक, चिन्तक होने के कारण सम-सामयिक विषयों को पाठकों तक पहुंचाने का उन्हें लंबा अनुभव प्राप्त है। महासभा परिवार एवं जैन भारती के पाठकों को पूरा विश्वास है कि आपके सम्पादकीय में प्रकाशित होने वाले जैन भारती के नवीन अंक प्रेरणादाई होंगे।

मैं आपके सम्पादकीय कार्यकाल के प्रारम्भ में शुभकामना संप्रेषित करता हुआ स्वस्थ स्वास्थ्य व आध्यात्मिक जीवन की मंगल कामना करता हूं। महासभा शताब्दी वर्ष का शिलान्यास व आचार्य तुलसी जन्म शताब्दी वर्ष का शिलान्यास श्रद्धेय आचार्यश्री महाश्रमणजी के पावन श्रीमुख से जसोल की पावन धरती पर हो गया है। मुझे पूरा विश्वास है कि जैन भारती के प्रकाशित होने वाले अंकों में महासभा का इतिहास व आचार्यश्री तुलसी के कर्तृत्व वैशिष्ट्य को प्रकाशित कर जन-जन की भावना की संपूर्ति में अमिट हस्ताक्षर आप बनेंगी।

–हीरालाल मालू

अध्यक्ष

जब जागे तभी सबेरा

JANUARY

S	M	T	W	T	F	S
		1	2	3	4	5
6	7	8	9	10	11	12
13	14	15	16	17	18	19
20	21	22	23	24	25	26
27	28	29	30	31		

लघुता से प्रभुता मिले

FEBRUARY

S	M	T	W	T	F	S
					1	2
3	4	5	6	7	8	9
10	11	12	13	14	15	16
17	18	19	20	21	22	23
24	25	26	27	28		

मुखड़ा क्या देखे दरपन में

MARCH

S	M	T	W	T	F	S
31					1	2
3	4	5	6	7	8	9
10	11	12	13	14	15	16
17	18	19	20	21	22	23
24	25	26	27	28	29	30

दीए से दीया जले

APRIL

S	M	T	W	T	F	S
	1	2	3	4	5	6
7	8	9	10	11	12	13
14	15	16	17	18	19	20
21	22	23	24	25	26	27
28	29	30				

खोए सो पाए

MAY

S	M	T	W	T	F	S
			1	2	3	4
5	6	7	8	9	10	11
12	13	14	15	16	17	18
19	20	21	22	23	24	25
26	27	28	29	30	31	

बिन पानी सब सून

JUNE

S	M	T	W	T	F	S
30						1
2	3	4	5	6	7	8
9	10	11	12	13	14	15
16	17	18	19	20	21	22
23	24	25	26	27	28	29

बीति ताहि बिसारि दे

JULY

S	M	T	W	T	F	S
	1	2	3	4	5	6
7	8	9	10	11	12	13
14	15	16	17	18	19	20
21	22	23	24	25	26	27
28	29	30	31			

जो सुख में सुमिरन करे

AUGUST

S	M	T	W	T	F	S
				1	2	3
4	5	6	7	8	9	10
11	12	13	14	15	16	17
18	19	20	21	22	23	24
25	26	27	28	29	30	31

बैसाखियां विश्वास की

SEPTEMBER

S	M	T	W	T	F	S
1	2	3	4	5	6	7
8	9	10	11	12	13	14
15	16	17	18	19	20	21
22	23	24	25	26	27	28
29	30					

दीया जले अगम का

OCTOBER

S	M	T	W	T	F	S
		1	2	3	4	5
6	7	8	9	10	11	12
13	14	15	16	17	18	19
20	21	22	23	24	25	26
27	28	29	30	31		

आत्मा के आस-पास

NOVEMBER

S	M	T	W	T	F	S
					1	2
3	4	5	6	7	8	9
10	11	12	13	14	15	16
17	18	19	20	21	22	23
24	25	26	27	28	29	30

मुक्ति इसी क्षण में

DECEMBER

S	M	T	W	T	F	S
1	2	3	4	5	6	7
8	9	10	11	12	13	14
15	16	17	18	19	20	21
22	23	24	25	26	27	28
29	30	31				

आचार्य तुलसी जन्म शताब्दी के उपलक्ष में प्रतिमाह गुरुदेव के साहित्य का सलक्ष्य स्वाध्याय करें

सम्पादकीय सफर की शुरुआत में यह पहला अंक समर्पित है पूज्य गुरुदेव के नाम, क्योंकि 2012-13 का वर्ष उनका जन्म शताब्दी वर्ष है। इसलिए इस अंक में मैंने सलक्ष्य उनके विचारों को आप तक पहुंचाने का एक छोटा-सा प्रयत्न किया है।

यूं तो आपने आचार्यश्री तुलसी को कई बार देखा, सुना, पढ़ा, समझा होगा। उसे आचरण में ढालने का संकल्प भी किया होगा। फिर भी उनके प्रवचन, साहित्य, उनकी सोच और प्रयोगधर्मिता इतनी प्रभावक, प्रेरक और प्राणवान है कि उसे जितनी बार पढ़ा जाए, हर बार कुछ न कुछ नया मिलता ही है। यह ऐसा उपक्रम है जिसे पढ़ते समय सिर्फ उसकी उपादेयता ही देखी जाती है। इसलिए समझ और आचरण की दिशा में एक कदम ही अगर उठ जाए तो सार्थक उपलब्धि मानी जा सकती है।

यह भी शुभ संयोग है कि तेरापंथ समाज की शीर्षस्थ संस्था जैन श्वेताम्बर तेरापंथी महासभा का भी जन्म शताब्दी वर्ष है। इसलिए हमें शताब्दी वर्ष की तैयारियों में अब और अधिक गतिशीलता लानी है।

यह वर्ष हमारा सफल उपलब्धियों का दस्तावेज बने, जिसके लिए आचार्य महाश्रमणजी ने हमारे नाम संदेश दिया है कि हम व्रती बनें। महाव्रती बनें। आत्मजिज्ञासु बनें और आत्मानुशासित बनें।

यह शुरुआत आत्म-संकल्पी बनने की तैयारी है। हम उत्तम श्रावक बनें और केवल बनें ही नहीं, दीखें भी, क्योंकि होने के साथ दीखना भी एक ईमानदार प्रयत्न है। जन्म दिन हो या फिर नया वर्ष आत्म-निरीक्षण जीवन का बोधपाठ है। इस दिन अपने आपसे एक प्रश्न करना चाहिए कि मैंने क्या किया और क्या करना अभी शेष है? अपने आपसे पूछने की यह आध्यात्मिक परम्परा आचार्य तुलसी के चैतन्य में सदा प्रवाहित रही। उनका साहित्य इस बात का साक्षी है कि भले ही प्रसंग जन्म दिन का हो या फिर पचीसवीं अथवा पचासवीं वर्षगांठ का, उन्होंने हर मौके पर आत्मचिन्तन किया और प्रवचन में अथवा लेखन में 'अपनी कहानी अपनी जुबानी' सुनाई। यह प्रक्रिया भी जहां उनकी वैचारिक प्रौढ़ता और धर्मक्रान्ति की चुनौती प्रतीत होती है वहीं अध्यात्म के शिखर को छूने की ऊंची छलांग भी लगती है।

इस आत्मचिन्तन में कहीं संघर्षों की धूप है तो कहीं उपलब्धिभरी सफलता की छांव। कहीं विकास के हस्ताक्षर है तो कहीं आत्मावलोकन की सहज स्वीकृति। कहीं प्रशासन शैली का संविधान है तो कहीं आभार और कृतज्ञता की प्रस्तुति। बिना बाकी, जोड़, गुणा और भाग किए जीवन को आईने की तरह पारदर्शी बना देना किसी जागृत चेतना का ही प्रतीक हो सकता है।

आचार्य तुलसी के जीवन का आदि, मध्य और अन्त इतना तेजस्वी और सम्मोहक है कि आंखें बार-बार उन्हें छूकर कृतार्थ होना चाहती हैं।

शताब्दी वर्ष की तारीख और तिथि बहुत नजदीक है। अब सिर्फ तैयारी ही नहीं, क्रियान्विति चाहिए। हमें बहुत कुछ करना है। सौ डिग्री पर जैसे पानी भाप बनता है, हमें वैसी तैयारी करनी है। अपनी क्षमताओं के जागरण में, उनके उपयोग में एक पल का भी विलम्ब न हो अन्यथा निन्यानवें प्रतिशत जागना भी सफलता नहीं दे सकेगा।

बदलने के नाम पर बहुत कुछ बदलना है। सामाजिक, सांस्कृतिक, संघीय और आध्यात्मिक भूमिका पर अनेक ऐसे कार्यक्रम और संकल्प हैं जिन्हें इस निमित्त से हमें पूरा करना है। हर उस अधूरे काम को अंजाम देना है जिसकी आहट आचार्य तुलसी को सुनाई दे, आचार्य महाप्रज्ञ की कल्पना को आकार मिले और आचार्यश्री महाश्रमण हमारी क्षमताओं पर आश्वस्त हों।

लेकिन इन सबसे पहले हम स्वयं स्वयं को देखें। औरों को बदलने से पहले खुद को बदलें। स्वयं के रूपान्तरण की निष्पत्ति ही इस शताब्दी वर्ष की तैयारी में गुरु के प्रति सच्ची श्रद्धांजलि होगी।

तो आइए, इस अंक में पढ़ें आचार्य तुलसी को जिन्होंने साहित्य की अनेक विधाओं में जीवन से जुड़ी ज्ञानपरक बातों को प्रस्तुत कर हमें रास्ता दिखाया है।

आज हम उन्हीं सन्दर्भों में उनका साक्षात् दर्शन कर रहे हैं। संघर्षभरा जिन्दगी का लेखा-जोखा इस बात का प्रमाण है कि आचार्य तुलसी जैसे महापुरुष शताब्दियों के बाद कहीं जन्म लेते हैं। सचमुच! उन्होंने संघ और समाज को अपरिमित ऊंचाइयां दी और चिन्तन का खुला आसमां दिया। उनकी सन्तता का हर शब्द, हर संवाद, हर सोच, हर संकेत सूक्त बना। इसलिए हम उन्हें शत-शत प्रणाम करते हैं।

उन्होंने अपने उत्तराधिकारी आचार्य महाप्रज्ञ को जो आशीर्वाद दिया था, कि शुभ भविष्य है सामने, वह आशीर्वाद वर्तमान में आचार्य महाश्रमण के कुशल नेतृत्व में आज भी हमारे मंगलमय भविष्य का निर्माण कर रहा है और भविष्य में भी करता रहेगा। हम प्रतिक्षण यह संकल्प करें कि शुभ भविष्य है सामने। शुभ भविष्य है सामने। शुभ भविष्य है सामने।

—शान्ता जैन

सुधि पाठको!

सादर प्रणाम

सम्पादन के नए दौर में पहला कदम रखते हुए मुझे इस बात का गौरव है कि जैन भारती की समृद्ध सम्पादकीय परम्परा में फिर एक बार पुनः जुड़ने का शुभ अवसर मिल रहा है। मैं श्रद्धाप्रणत हूं श्रद्धेय आचार्यश्री तुलसी और आचार्यश्री महाप्रज्ञ के प्रति जिन्होंने साहित्यिक दिशा में आगे बढ़ने का मुझे मौका दिया। कृतज्ञ हूं श्रद्धेय आचार्यश्री महाश्रमण के प्रति जिन्होंने आत्मविकास की आश्वस्ति दी। वन्दनीया साध्वीप्रमुखा कनकप्रभाजी की प्रेरणा के साथ यह सफर मुकाम तक पहुंचे, यही अभीप्सा है।

हार्दिक प्रसन्नता है कि प्रबुद्ध साहित्यकार, प्रौढ़ विचारक और प्रखर लेखक श्री शुभूजी पटवा के कुशल सम्पादन के बाद महासभा द्वारा यह दायित्व मुझे मिला है। विश्वास है, यह प्रशस्त पथ मेरे लिए राजपथ बनेगा।

शुभकामना सहित जनवरी 2013 का अंक समर्पित।

मंगल सन्देश नव वर्ष 2013

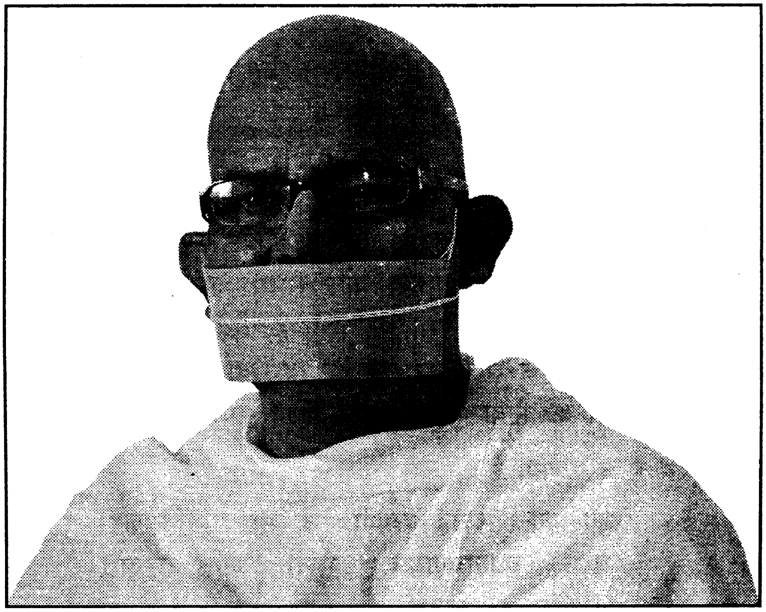

अर्हम्

प्रतिक्षण काल बीत रहा है। एक दिन के स्थान पर दूसरा दिन, एक माह के स्थान पर दूसरा माह और एक वर्ष के स्थान पर दूसरा वर्ष अपना आसन जमा लेता है। सन् 2012 की विदाई और सन् 2013 का प्रारंभ होने जा रहा है। जिन लोगों के मन में नए वर्ष के प्रति उल्लास और उमंग है, वे सन् 2013 के लिए पवित्र संकल्पों को स्वीकार करने का मानस बनाएं, जैसे—

मैं इस वर्ष में क्रोधमुक्त रहने का अभ्यास करूंगा।

मैं इस वर्ष में प्रामाणिकता का अभ्यास रखूंगा। आदि।

संकल्पों के अतिरिक्त समय का सदुपयोग करने का प्रयास वांछनीय है। जो आदमी समय को बर्बाद करता है, वह बर्बाद हो जाता है। जो आदमी समय का उत्तम उपयोग करता है, वह महान् बन जाता है। समय का अंकन हो और सन् 2013 को पवित्र भावों और निर्मल कार्यों के द्वारा महत्त्वपूर्ण बनाने का प्रयास करें। शुभाशंसा

—आचार्य महाश्रमण

समय का अंकन

आचार्यश्री महाश्रमण

आर्हत् वाङ्मय का एक सूक्त है—खणं जाणाहि पंडिए। समझदार आदमी समय का मूल्यांकन करे, समय के महत्त्व को समझे। अंग्रेजी भाषा में सुंदर कहा गया—Time is money, समय धन है। जैसे पैसा धन होता है, वैसे ही समय भी बड़ा धन होता है। जिस प्रकार कंजूस आदमी सोच-सोच कर पैसे को खर्च करता है, वैसे ही आदमी सोच-सोच कर पवित्र कार्यों में समय का नियोजन करे। बीता हुआ समय लौटता नहीं है।

जैन वाङ्मय में कहा गया है

जा जा वच्चई रयणी, न सा पडिनियत्तई।
धम्मं कुणमाणस्स, सुला जंति राइओ।।

जो-जो रात्रियां बीत रही हैं, वे लौटती नहीं हैं। धर्म करने वाले की रात्रियां सफल हो जाती हैं और अधर्म करने वाले की रात्रियां निष्फल हो जाती हैं या खराब फल देने वाली हो जाती हैं। आदमी समय को आगे से पकड़ने का प्रयास करे, उसका अच्छा उपयोग करे। सन् 2012 का वर्ष संपन्नता की ओर है एवं सन् 2013 के प्रारंभ का समय सन्निकट है। यों तो नए वर्ष के प्रारंभ में उल्लास का माहौल रहता है, परंतु उसके साथ हमें यह भी विचार करना चाहिए कि हमारे जीवनकाल का एक वर्ष कम हो गया। हमें विहंगावलोकन करना चाहिए कि हमनें इस एक वर्ष का उपयोग कैसे किया? संस्कृत वाङ्मय में कहा गया है—

उत्थायोत्थाय वोद्धव्यं किमद्य सुकृतं कृतं।
आयुषः खण्डमादाय रविरस्तमं गतः।।

आदमी को प्रतिदिन उठ-उठकर सोचना चाहिए कि आज का दिन व्यतीत हो गया। आज के दिन मैंने सुकृत क्या किया? यह सूरज आया और चला गया, जाते समय हमारे जीवनकाल का एक अंश भी साथ ले गया। अगर हमने सुकृत किया है तो हमारा आज का दिन सुफल है। अगर दुष्कृत किया है तो हमारा आज का दिन दुष्कृत हो गया। हम प्रतिदिन सुकृत कार्य करें तो हमारा हर दिन सफल हो सकता है और हर वर्ष भी सफल हो सकता है।

आदमी आकाश में रहता है और समय के साथ जीता है। आकाश और काल—ये दो चीजें हमारे जीवन के साथ बहुत गहराई से जुड़ी हुई हैं। समय का कितना मूल्य है, एक उदाहरण के द्वारा कल्पना की जा सकती है—एक वर्ष का महत्त्व किसी वार्षिक परीक्षा में अनुत्तीर्ण हुए विद्यार्थी से पूछा जाए। एक महीने का मूल्य उस मां से पूछा जाए जिसने गर्भ को एक महीने पहले ही प्रसूत कर दिया। एक सप्ताह का मूल्य किसी साप्ताहिक पत्रिका के संपादक से पूछा जाए। एक दिन का मूल्य उस आदमी को पूछा जाए, जो अपने प्रिय व्यक्ति की प्रतीक्षा में बैठा है। एक घंटे का मूल्य उस व्यक्ति से पूछा जाए, जिसके घर में आग लग गई और अग्निशामक वाहन

के आने में एक घंटा विलंब हो गया। एक मिनट का मूल्य उस यात्री से पूछा जाए, जिसकी एक मिनट की देरी के कारण प्लेन या ट्रेन रवाना हो गई। एक सेकण्ड का मूल्य उस आदमी से पूछा जाए जो किसी भयंकर हादसे से बाल-बाल बच गया हो। इस प्रकार हम जान सकते हैं कि समय का कितना मूल्य है। महत्त्वपूर्ण बात है कि आदमी समय का नियोजन कैसे करता है। समय का प्रबंधन कैसे करता है। समय का सम्यक् नियोजन कर ले तो आदमी बहुत बड़ी सफलता हासिल कर सकता है। चौबीस घंटे रोज हम सभी को मिलते हैं। किसी को कम या किसी को ज्यादा नहीं मिलते। प्रश्न है कि चौबीस घंटों का उपयोग हम किस प्रकार करते हैं? आदमी इस प्रकार अपने समय का प्रबंधन करे क़ि समय का अच्छा उपयोग हो सके। सदुपयोग करने वाला व्यक्ति दुनिया का महान् व्यक्ति होता है और उसका दुरुपयोग करने वाला व्यक्ति दुनिया का अधम आदमी होता है। एक बुद्धिमान आदमी समय का उपयोग कैसे करता है, इसके लिए संस्कृत साहित्य में कहा गया है—

काव्यशास्त्रविनोदेन कालो गच्छति धीमताम्।
व्यसनेन च मूर्खाणां निद्रया कलहेन वा।।

ज्ञानवान आदमी का समय काव्यशास्त्र के विनोद में, चर्चा में बीतता है, अच्छे कार्यों में लगता है और मूर्ख आदमी का समय व्यसन में या बेकार की बातों में—नींद में, आलस्य में या लड़ाई-झगड़ों में बीतता है। समय सभी के पास है। किसका समय किस रूप में बीतता है, यह महत्त्वपूर्ण बात है।

हमारे सामने सन् 2013 का वर्ष है। हम पहले प्लानिंग करें कि सन् 2013 में हमें क्या-क्या करना है? अच्छी योजना के साथ नव वर्ष का प्रारंभ हो तो यह नया वर्ष हमारे लिए बहुत सार्थक और सफल सिद्ध हो सकता है। हमारा समय कुछ धार्मिक कार्यों में भी लगना चाहिए, सत्साहित्य के पठन में भी लगना चाहिए। हालांकि कुछ लोग बड़े व्यस्त होते हैं। वे व्यस्तता में भी जितना संभव हो सके धर्मोपासना के लिए, धर्म की साधना के लिए, ध्यान आदि के लिए समय निकालने का प्रयास करें। राजस्थानी भाषा में एक दोहा आता है—

आगै धन्धो, पाछै धन्धो, धन्धा मांही धन्धो।
धन्धा मस्यु समय निकालै बो साहिब को बन्दो।।

अगर समय का प्रबंधन बढ़िया हो जाए और प्राथमिकता के अनुसार समय का नियोजन किया जाए तो हमारा समय बहुत व्यवस्थित रूप में व्यतीत हो सकता है। एक हलवाई व्यस्त रहता था। मैं व्यस्त हूं, यह उसका तकियाकलाम-सा बन गया था। वह बात-बात में कहता रहता कि मैं बड़ा व्यस्त हूं। एक बार उसकी धर्मपत्नी ने कहा—'भोजन बन गया, पहले खाना खा लो।' उसने कहा—'नहीं, अभी तो मैं बहुत व्यस्त हूं। अभी मुझे मरने की भी फुर्सत नहीं है।' उस दिन हलवाई की पत्नी भी कुछ तैश में आ गई और बोली—'देखो, अभी मरना मत, मुझे अभी रोने की भी फुर्सत नहीं है।' परम पूज्य आचार्यश्री महाप्रज्ञजी कहा करते थे कि जो अपने आपको ज्यादा व्यस्त मानता है वह दुनिया का निकम्मा आदमी होता है। चिन्तनशील आदमी ज्यादा महत्त्वपूर्ण कार्यों को प्राथमिकता देते हुए अपने समय का सम्यक् नियोजन करे।

आदमी बीते वर्ष की समीक्षा करे और अग्रिम वर्ष के लिए संकल्प करे कि इस वर्ष में जो भूलें हुई हैं, सन् 2013 में उन भूलों की पुनरावृत्ति नहीं करूंगा। आदमी में परिष्कार की मनोवृत्ति होनी चाहिए। परिष्कार से जीवन में निखार आता है। हम एक-दूसरे के लिए और स्वयं के लिए भी मंगलकामना करें कि हमारा सन् 2013 का वर्ष बहुत शुभ बीते और हम संपदाओं से संपन्न बनें।

- मैं आभा संपन्न बनूं।
- मैं अनुशासन संपन्न बनूं।
- मैं बुद्धि संपन्न बनूं।
- मैं शांति संपन्न बनूं।
- मैं धैर्य संपन्न बनूं।
- मैं शक्ति संपन्न बनूं।
- मैं आनंद संपन्न बनूं।
- मैं तेज संपन्न बनूं।
- मैं पवित्रता से संपन्न बनूं। ❑

तुलसी
पवित्रता का बोधिवृक्ष था
इसलिए
श्रद्धा और सम्मान के साथ
उसकी परिक्रमा देकर
मैं श्रद्धा प्रणत हूं।
उस अशेष के नाम—आज क्या लिखूं?
सब कुछ लिखकर भी
बहुत कुछ आखिर शेष ही रह जाएगा,
क्योंकि, आज
संवाद मौन है, चिंतन थमा सा।
प्रस्तुति शब्द तलाशती है,
मन खोया खोया सा।
आज तो सिर्फ उस विराट् चेतना को
श्रद्धासिक्त शत शत नमन।
कल (अब से)
तुलसी के कर्तृत्व और व्यक्तित्व को
हम शब्दों में उतारेंगे
चित्रों में उकेरेंगे
गीतों में गूंथेंगे
ग्रन्थों में बांधेंगे,
क्योंकि
वह यज्ञोपवीत है
हमारे शासन का,
वह तीरथधाम है
मानव मानव का,
हम उसे पढ़ेंगे, सुनेंगे, लिखेंगे, समझेंगे।
सांस-सांस जीएंगे,
और उनके सपनों को सच में ढालेंगे।

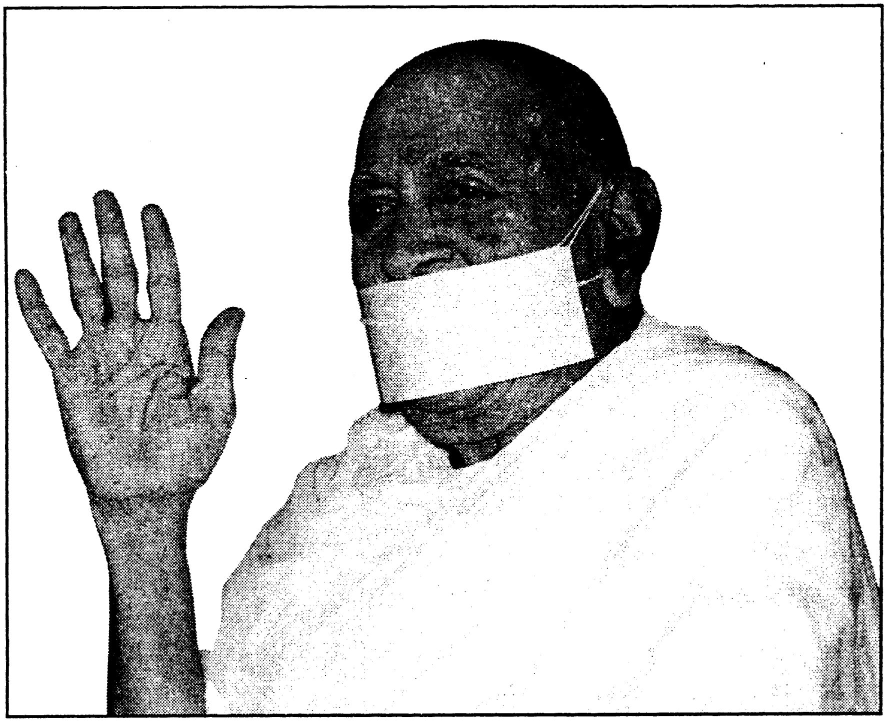

आचार्य तुलसी जन्म शताब्दी वर्ष पर

तेरा तुझको करते अर्पण

समर्पित कर
जैन भारती परिवार
पावन सन्तता के चरणों में
श्रद्धा प्रणत हैं।
'हम इस अवसर पर संकल्पित हैं—
बिन्दु में सिन्धु खोजने के लिए
दीए में प्रकाश पाने के लिए
समन्दर की थाह देखने के लिए
आसमान की सीमा मापने के लिए।
यह सफरनामा चलता रहे,
जो पाएं, पाकर हम विकास करते रहें,
जीवन का हर पल कृतार्थ होता रहे।।

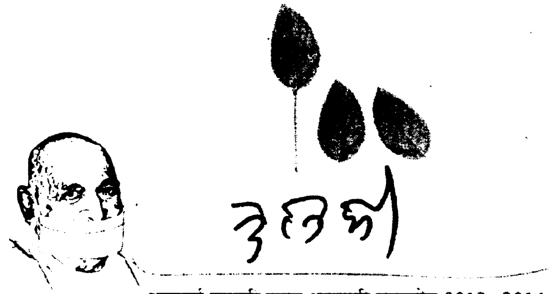

• आचार्य तुलसी जन्म शताब्दी समारोह 2013 - 2014

भारत में संत-मनीषियों की एक सुदीर्घ परम्परा रही है। उन्होंने अपने व्यक्तित्व एवं कर्तृत्व से समय-समय पर देश का सचेत मार्गदर्शन किया है। बीसवीं सदी में उसी मणिमाला के एक संतरत्न हुए हैं–आचार्य तुलसी। उनका जन्म 20 अक्टूबर, 1914 को राजस्थान के एक कस्बे लाडनूं में ओसवाल जैन परिवार में हुआ। 15 दिसंबर, 1925 को जीवन के 12वें वर्ष में उन्होंने जैनधर्म के श्वेताम्बर तेरापंथ सम्प्रदाय के अष्टमाचार्य कालूगणी के पास जैनमुनि-दीक्षा ग्रहण की। मात्र 22 वर्ष की लघु वय में वे तेरापंथ के नवमाचार्य के रूप में अधिष्ठित हो गए।

तेरापंथ उस समय अपेक्षाकृत एक छोटा सम्प्रदाय था पर सुदृढ़ आचार-विचार, कुशल अनुशासन एवं आचार्य तुलसी के स्फूर्त नेतृत्व ने उसे जो विराटता प्रदान की, वह आज विश्रुत है। आचार्य तुलसी ने अपने आचार्यकाल के प्रथम 11 वर्ष संघ के आन्तरिक निर्माण में लगाए। उसे शिक्षा तथा साहित्य से सन्नद्ध कर एक नया परिवेश प्रदान किया।

34 वर्ष की उम्र में 1 मार्च, 1949 को आचार्य तुलसी ने अणुव्रत के रूप में एक असाम्प्रदायिक नैतिक आन्दोलन का प्रवर्तन किया। भारत की स्वतंत्रता के उस आदियुग में विभिन्न क्षेत्रों के अनेकानेक शिखरपुरुषों के साथ-साथ आम-आवाम का भी उन्हें भरपूर सहयोग मिला। अणुव्रत के मिशन को लेकर उन्होंने देश के विभिन्न प्रांतों की पदयात्रा कर अहिंसक चेतना, सह-अस्तित्व, सत्यनिष्ठा, प्रामाणिकता, सर्वधर्मसद्भाव, नैतिक अभ्युदय, मानवीय एकता, चरित्र-शुद्धि आदि मूल्यों की प्रतिष्ठा की दृष्टि से भगीरथ प्रयत्न किया। इसके साथ ही व्यसन-मुक्ति, रूढ़ि-उन्मूलन, नारी-जागरण, अस्पृश्यता-निवारण आदि क्षेत्रों में भी उनका योगदान अत्यंत उल्लेखनीय रहा है।

41 वर्ष की उम्र में आचार्य तुलसी ने *जैन आगमों* के शोध का कार्य अपने हाथों में लिया। निश्चय ही प्राच्य विद्याओं के विकास में उनके जीवन की यह एक विशेष उपलब्धि थी।

अपने उत्तराधिकारी आचार्य महाप्रज्ञ की प्रज्ञा को उभरने का मौका देकर आचार्य तुलसी ने *प्रेक्षाध्यान* और *जीवन-विज्ञान* के नए आयाम खोजने में अपनी क्षमता का सुघड़ उपयोग किया। अध्यात्म और विज्ञान के समन्वय की दिशा में किए गए उनके प्रयास भी अत्यंत श्लाघनीय हैं। 18 फरवरी, 1994 को उन्होंने आचार्य पद का विसर्जन कर एक नया इतिहास रचा। मानवता की महनीय सेवा के लिए उन्हें इंदिरा गांधी राष्ट्रीय एकता पुरस्कार आदि अनेक पुरस्कारों से नवाजा गया। 23 जून, 1997 को गंगाशहर (बीकानेर) में उनका महाप्रयाण हो गया।

सन् 2013-2014 में आचार्य तुलसी की जन्म शताब्दी का आयोजन तेरापंथ धर्मसंघ के 11वें अनुशास्ता आचार्य महाश्रमण के आध्यात्मिक नेतृत्व में किया जा रहा है। एतदर्थ आचार्य तुलसी जन्म शताब्दी समारोह समिति का गठन किया गया है।

आचार्य तुलसी जन्म शताब्दी समारोह संयोजना : निर्धारित परियोजना

- तेरापंथ धर्मसंघ में 100 मुनि-दीक्षाएं
- अणुव्रती बनाने का राष्ट्रव्यापी अभियान
- अणुव्रत प्रचेताओं का निर्माण
- अणुव्रत के संदर्भ में प्रत्येक मास की शुक्ला द्वितीया अथवा उसके निकटवर्ती रविवार आदि के दिन मासिक संगोष्ठी का आयोजन।
- अणुव्रत पर अंतरराष्ट्रीय सम्मेलन
- राष्ट्रव्यापी अणुव्रत संकल्प यात्रा
- विद्यालयों में अणुव्रत नियमावली का आलेखन
- विद्यालयों में अणुव्रत परीक्षाओं का उपक्रम
- विराट् अभिनव सामायिक का आयोजन
- आचार्य तुलसी के सम्पूर्ण साहित्य का *तुलसी वाङ्मय* के रूप में व्यवस्थित प्रस्तुतीकरण
- आचार्य तुलसी की चयनित कृतियों का विभिन्न भाषाओं में अनुवाद
- आचार्य तुलसी स्मृति ग्रंथ का निर्माण
- आचार्य तुलसी जीवन-वृत्त का लेखन
- तुलसी महाकाव्यम् का सम्पादन
- आचार्य तुलसी पर एनिमेशन फिल्म
- आचार्य तुलसी के ऐतिहासिक चित्रों की दीर्घा
- आचार्य तुलसी की जन्मभूमि लाडनूं में आचार्य तुलसी नगरद्वार का निर्माण
- विभिन्न नगरों में आचार्य तुलसी चौक, आचार्य तुलसी मार्ग का नामकरण
- अनेक नगरों में तेरापंथ भवनों का निर्माण
- प्रचार-प्रसार के मीडिया प्रबंधन।

आचार्य तुलसी जन्म शताब्दी समारोह 2013-2014

- शुभारम्भ : कार्तिक शुक्ला 2 वि.सं. 2070, 5 नवंबर, 2013
- समापन : कार्तिक शुक्ला 2 वि.सं. 2071, 25 अक्टूबर, 2014
- पावन पथदर्शन : तेरापंथ के 11वें अनुशास्ता आचार्यश्री महाश्रमण

चरण	तिथि	दिनांक	स्थान
प्रथम	कार्तिक शुक्ला द्वितीया, वि.सं. 2070	5 नवंबर 2013	लाडनूं
द्वितीय	माघ शुक्ला षष्ठी, वि.सं. 2070	5 फरवरी 2014	गंगाशहर
तृतीय	भाद्रपद शुक्ला नवमी, वि.सं. 2071	7 सितंबर 2014	दिल्ली
चतुर्थ	कार्तिक शुक्ला द्वितीया, वि.सं. 2071	25 अक्टूबर 2014	दिल्ली

नोट : ऊपर लिखित कार्यक्रम के चारों चरण आचार्यश्री महाश्रमण के सान्निध्य में आयोजित होंगे। प्रत्येक चरण का आयोजन साप्ताहिक निर्धारित है।

आचार्यतुलसी जन्म शताब्दी समारोह समिति

अणुव्रत भवन, 210, दीनदयाल उपाध्याय मार्ग, नई दिल्ली-110002

ई-मेल:mail@acharyatulshi.in, मो. +91 965400054, 9654000055. www.acharyatulsi.in

आचार्य तुलसी : ज्योतिर्मय साधक

''**गुरु और गुरुत्व**—मुनि होना जीवन की एक बहुत बड़ी घटना है। और कुछ होने में आदमी संचित करता है, मुनि होने वाला विसर्जन करता है—शरीर का विसर्जन, इच्छा का विसर्जन, संकल्प का विसर्जन और अहं का विसर्जन। तुलसी एक दिन मुनि बने, शिष्य बने। महामना कालू को अपना गुरु चुना। अहं से इतने खाली हुए कि गुरु ने उन्हें भर दिया। इतना भरा कि बाईस वर्ष की छोटी-सी अवस्था में गुरु बन गए। तेरापंथ की परम्परा में गुरु ही किसी को गुरु बनाता है, अतः कहा जा सकता है कि गुरु प्रदत्त होता है, किन्तु गुरुत्व प्रदत्त नहीं हो सकता। आचार्य तुलसी ने अपने गुरुत्व को विकसित किया और इतना किया कि जिससे यह अनुभव नहीं हुआ कि वह गुरु प्रदत्त है। उन्होंने विद्या का वितरण किया—अपने शिष्यों में, गुरु-भाइयों में और आस-पास के समूचे वातावरण में। कुछ ही वर्षों में तेरापंथ का मनीषी वर्ग ज्ञान के शिखरों को छूने लगा।

नैतिकता और धर्म—ज्ञान तभी कृतार्थ होता है जब उसकी निष्पत्ति आचार में होती है। ग्यारह वर्ष तक ज्ञान की अजस्र धारा प्रवाहित कर आचार्यश्री ने आचार की प्रतिष्ठा की। क्रियाकाण्ड से आवृत धर्म अनावृत किया। नैतिकता का स्वर मुखर हो गया। लगा, जैसे कोई मसीहा आया है—सचाई, ईमानदारी और प्रामाणिकता के पराग-कणों को बिखेरने के लिए। उसके कण इतने विकीर्ण हो गए हैं कि आज नैतिकता-शून्य धर्म की कोई प्रतिष्ठा नहीं है। कोई श्रेय दे या न दे, किन्तु इतिहासकार यह श्रेय देने में कृपणता नहीं करेगा कि नैतिकता-विहीन धर्म की धारणा को आचार्यश्री तुलसी ने बदला है।

नेतृत्व की निष्पत्ति—मैं नहीं मानता कि कोई आदमी सबका हृदय बदल दे और सबको ईमानदार बना दें, किन्तु जो आदमी जनता को इसकी अनुभूति करा दे कि वह धर्म व्यक्ति और समाज का भला नहीं कर सकता, जिसकी पहली निष्पत्ति नैतिकता का विकास न हो, वही वास्तव में धर्म का नेता होता है। इसमें कोई संदेह नहीं कि आचार्य तुलसी ने इस युग में धर्म का नेतृत्व किया है, साथ-साथ समन्वय का नेतृत्व किया है। धर्म के मंच पर संगठन और एकता को प्राणवान बनाया है। उन्होंने और भी बहुत कुछ किया है, किन्तु जीवन का यह एक ही पहलू ऐसा है, जिसमें बहुत कुछ समा जाता है। यह मुनित्व की निष्पत्ति है, गुरुत्व की निष्पत्ति है और धर्म के नेतृत्व की निष्पत्ति है।

साधना का जीवन—आचार्य तुलसी केवल मुनि नहीं है, जो अपने में लीन रहे। वे केवल गुरु नहीं है, जो अपने संप्रदाय का नेतृत्व करे। वे धर्म की उस महान् परम्परा के नेता है, जिसमें समूची मानवजाति और प्राणी-जगत का हित सन्निहित है। उनका कार्य है— सबके लिए प्रकाश की रश्मियों को प्रसारित करना।

उनकी ज्योतिर्मय साधना, अध्यात्म और विज्ञान में ऐसा समन्वय करे, जिससे बुद्धि धर्म के प्रति प्रणत हो जाए और धर्म की गरिमा को बढ़ाए।''

—आचार्य महाप्रज्ञ

आभावलय की आभा

'पूज्य आचार्यश्री तुलसी धर्मसंघ के अनुशास्ता थे, इसलिए उनका प्रशासनिक रूप जब-तब प्रकट होता रहता था। उनके इस प्रशासनिक रूप में कठोरता का दर्शन भी होता था, पर मेरा अनुमान है कि उनकी कषाय बहुत शान्त थी। वह कठोरता मात्र प्रशासनिक स्तर पर ही होती थी, अन्तर में कषाय की उत्तप्तता सम्भवतः बहुत कम थी। यही तो कारण है कि प्रशासनिक संदर्भ पूरा हुआ कि उनके वचनों एवं नयनों से वात्सल्य का निर्झर फूट पड़ता।

संघ के छोटे से छोटे सदस्य के प्रति भी वे बहुत कोमल भावना रखते थे, उसकी हित-गवेषणा करते रहते थे। प्रशासनिक कार्रवाई के मूल में भी तो व्यक्ति का एकान्ततः हित-चिन्तन ही प्रमुख होता था।

अनेक व्यस्तताओं के बीच भी गुरुदेव के आसन-प्राणायाम आदि का क्रम चलता रहता था। ध्यान, जाप, माला आदि में भी वे अपने समय का नियोजन करते थे। और भी कुछ आध्यात्मिक प्रवृत्तियां उनके जीवन से जुड़ी हुई थीं, पर ये प्रवृत्तियां गौण बात थीं। मूलतः वे एक सहज सिद्ध-योगी थे। इसलिए क्षुधा-विजय, निद्रा-विजय जैसी स्थितियां, जो दीर्घकालीन साधनासापेक्ष हैं, उनके जीवन में सापेक्ष थी।

घंटों-घंटों एक आसन में बड़ी सहजता से बैठे रहते थे। योग बहुत स्थिर थे। खाद्य-संयम एवं अनासक्ति अत्यंत प्रेरक थी। एक झटके में चीनी और गुड़ तथा उनसे बने खाद्य पदार्थों का उन्होंने प्रायः परित्याग कर दिया। वर्षों तक यह क्रम चला। उनका आभावलय अत्यंत पवित्र एवं तेजस्वी था। इसीलिए उनके आभावलय के प्रभाव क्षेत्र में व्यक्ति को सहज शान्ति और शक्ति की अनुभूति होती थी।

पूज्यवर की जागृत आध्यात्मिक चेतना का एक बहुत स्पष्ट निदर्शन उनकी उल्लेखनीय अप्रमत्तता थी। उनकी इस विशेषता के अनेक विरोधी भी कायल थे। वे अपनी अध्यात्म साधना को अत्यन्त जागरूकता से आगे बढ़ाते रहे। पूरे धर्मसंघ को भी अध्यात्म-साधना के ऊंचे से ऊंचे स्थान पर पहुंचाने की उनके मन में गहरी तड़प थी, उसके प्रति जागरूक थे। इसलिए उन्होंने अपने आचार्यकाल में धर्मसंघ में समय-समय पर अनेक साधना-क्रम प्रायोगिक स्तर पर प्रारंभ किए। 'कुशल', 'भावितात्मा', 'प्रणिधान कक्ष' आदि इसी श्रृंखला की कई कड़ियां हैं। प्रेक्षाध्यान उसकी नवीनतम कड़ी है। वे चाहते थे कि साधु-साध्वियां, समण-समणियां प्रेक्षाध्यान के साधक बने। उनकी अभीप्सा तो यह भी थी कि जिनकी क्षमता हो, वे इस साधनापद्धति के आधिकारिक प्रशिक्षक भी बनें।'

–आचार्य महाश्रमण

तृप्ति की सौगात

साध्वीप्रमुखा कनकप्रभा

तृप्ति की सौगात है तुम पर निछावर, पी सकूं सागर मुझे वह प्यास दे दो।
पंख अपने सौंपती तुमको स्वयं मैं, तुम मुझे निस्सीम नभ में वास दे दो।।

धुंध में डूबा हुआ है जगत सारा, ज्योति का अवदान अब किससे मिलेगा?
गहराती जाती उदासी जिन्दगी पर, फूल खुशियों का भला कैसे खिलेगा?
अब सहारा बस तुम्हारा ही बचा है, घुट रही जो सांस उसको आस दे दो ।।

दर्द से टूटा हुआ जब आदमी है, क्या भरोसा दीप आस्था का जलाएं,
आ रहे तूफान पर तूफान ही जब, आशियां अपना वहां कैसे बनाएं?
जम रहे शैवाल जो भ्रम के निरंतर, दूर कर उनको अटल विश्वास दे दो।।

बरसते अंगार ही जब चांदनी से तिमिर का साम्राज्य दीपक के तले है,
पंथ मंजिल का स्वयं सहमा हुआ है, सच कहां? सपने न पलकों में पले हैं,
दूर तक खामोशियों का एक जंगल, तुम नई उम्मीद नव उल्लास दे दो।।

गत अनागत सेतु तुम शाश्वत समुज्ज्वल, नियति नर की जब तुम्हारे हाथ में है,
अनकही मन की तुम्हें है ज्ञात सारी, जिन्दगी के दिन तुम्हारे साथ में हैं,
कोटि नखतों से खचित इस यामिनी को, सत्य-सूरज के लिए आकाश दे दो।।

उजालों के आस-पास

आचार्य तुलसी का व्यक्तित्व, कर्तृत्व और नेतृत्व इतना विशाल है कि उसे शब्दों की सीमा में समेटना इतना आसान नहीं, जितना हम भोलेपन में भक्त लोग मान बैठते हैं। एक ओर उनके अमाप्य साहित्य ने जहां व्यष्टि से समष्टि तक जुड़ी हर समस्या का समाधान सुझाया है, वहीं दूसरी ओर प्रखर प्रवचनों में मन और आत्मा को छू लेने वाली विचार धारा को प्रवाहित किया है। एक ओर आगमिक तत्त्व मीमांसा में अवगाहन करते हुए जैन-धर्म-दर्शन की अनेक गुत्थियां सुलझाई हैं, वहां दूसरी ओर साधना की अतल गहराइयों में डूबकर आत्मविश्लेषण की मनोवैज्ञानिक और आध्यात्मिक प्रक्रिया प्रस्तुत की है। इस इन्द्रधनुषी व्यक्तित्व के कई रूप हैं। कहां से पकड़ें और किसे छोड़ें?

एक छोटा-सा प्रयास किया है इस अंक में गुरुदेव के जीवन से जुड़े कुछेक प्रसंगों, अनुभूत सत्यों और आलेखों को समेटने का, क्योंकि समन्दर को छुआ जा सकता है पर बांहों में समेटा नहीं जा सकता है।

लक्ष्य प्राप्ति की दिशा में प्रस्थान

मेरा जीवन ही मेरा संदेश

संयम, श्रम और सादगीपूर्ण मेरा जीवन ही मेरा संदेश है। मैं संयममय जीवन जीता हूं। संयम के शिखर तक आरोहण करना मेरा लक्ष्य है। मैं चाहता हूं, इस दिशा में कुछ विशेष प्रयोग करूं? श्रमशील जीवन जीना मेरी अभिरुचि है। मैं जब तक रहूं, श्रम करता रहूं, यह मेरी आकांक्षा है। सादगी संयम का भूषण है। इससे मुझे सहज और स्वस्थ जीवन जीने का संबल उपलब्ध होता है।

मुझे ये संस्कार विरासत में मिले हैं। मैंने ऐसा जीवन जीना पूज्य गुरुदेव कालूगणी से सीखा है। इसे सीखने के लिए मुझे किसी महाविद्यालय या विश्वविद्यालय में नहीं जाना पड़ा। यह भारतीय संस्कृति है। अध्यात्म की संस्कृति है, जैन धर्म की संस्कृति है और तेरापंथ की संस्कृति है। तेरापंथ के लिए तो यह वरदान है। संयम से आत्मानुशासन का विकास होता है। श्रम से सक्रियता बनी रहती है और सादगी व्यक्ति को यथार्थ की धरती से जोड़कर रखती है। मैं चाहता हूं कि पूरे धर्मसंघ में ये संस्कार पुष्ट हों।

जानेवाले को अलविदा कहना और आने वाले का स्वागत करना इस संसार की रीत है। व्यक्ति जाता है तो गम का सैलाब छोड़ जाता है और आता है तो खुशियों का सैलाब लेकर आता है। व्यक्ति की तरह वक्त भी मनुष्य के मन को प्रभावित करता है। वक्त शब्द काल का वाचक है। उसका सबसे छोटा हिस्सा समय कहलाता है। पर सामान्य काम के लिए भी समय शब्द का प्रयोग होता आया है। समय गतिशील है। वह कभी ठहरता नहीं है। ठहरना तो दूर, ठिठकता भी नहीं और पीछे मुड़कर देखना तो उसने सीखा ही नहीं है। वह नदी के प्रवाह की तरह बहता रहता है। नदी के उसी जल में कोई व्यक्ति दूसरी बार हाथ नहीं धो सकता। इसी प्रकार समय का उपयोग भी एक ही बार होता है।

बीते वर्ष को हमने अलविदा कहा। नया वर्ष हमारे द्वार पर खड़ा है। जो गया, उसकी समीक्षाएं हो रही हैं। इस वर्ष भारत ने क्या किया? विश्व ने क्या किया? समस्याएं उलझीं या सुलझीं? क्या खोया? क्या पाया? राजनैतिक, सामाजिक, सांस्कृतिक, आर्थिक, राष्ट्रीय और अन्तरराष्ट्रीय–समीक्षा के अनेक मुद्दे हो सकते हैं। अनेक पत्रों, पत्रकारों और लेखकों ने इस संदर्भ को अपनी कलम की नोक से कागज पर उतारा है। यह सिलसिला अभी चालू रह सकता है। नैतिक या मानवीय मूल्यों के विकास और ह्रास की मीमांसा पर कितने लोगों की कलमें चली हैं, यह देखना है। जो बीत गया, वह अतीत हो गया। उसकी समीक्षा से हम कोई सबक लें। गत वर्ष जो कुछ अवांछनीय हुआ, इस वर्ष उसकी पुनरावृत्ति न हो, तभी समीक्षाओं की सार्थकता हो सकती है।

नया वर्ष हमारे सामने है। समय की धूल पर जिस व्यक्ति, समाज, संगठन, प्रांत या राष्ट्र के पदचिह्न अंकित होते हैं, वह औरों के लिए मार्ग बना सकता है। बने-बनाए मार्ग पर चलना सरल है। इसमें किसी का

अपना कर्तृत्व नहीं होता। नए मार्ग का निर्माण कठिन होता है। ऐसे मार्ग का निर्माण तो और भी कठिन है, जिस पर लाखों-करोड़ों लोग चल सकें। महाजनो येन गतः स पन्थाः—महान् व्यक्ति जिस रास्ते से चलते हैं, वह पथ बन जाता है।

कोई क्रांतदर्शी या क्रांतिकारी व्यक्ति अपने पुरखों की पूंजी का उपयोग कर प्रसन्न नहीं होता। अपने बाहुबल से अर्जित सम्पत्ति का भोग करने में वह गौरव का अनुभव करता है। ऐसे व्यक्तियों की भी कमी नहीं है, जो अपने पूर्वजों के पुरुषार्थ पर अपने भाग्य को चमकाते हैं, किंतु जिनकी भुजाओं में कर्तृत्व फड़कता है, वे स्वयं के बलबूते पर ही प्रतिष्ठित होने का प्रयास करते हैं।

हर व्यक्ति नया पथ बनाएगा तो कितने पथ हो जाएंगे? कुछ लोग ऐसी चिन्ता भी करते हैं। क्या अर्थ रखती है ऐसी चिन्ता? जितने युग, उतने पथ। जितने समय, उतने मार्ग। मार्गों में समानता हो सकती है, विविधता हो सकती है, पर निर्माण क्यों नहीं हो सकता? तीर्थंकर कभी क्षुण्णमार्ग से नहीं चलते हैं। पूर्ववर्ती तीर्थंकरों द्वारा निरूपित सत्य और उत्तरवर्ती तीर्थंकरों द्वारा निरूप्यमाण सत्य में कोई भेद नहीं होता, फिर भी वे अपने सत्य का निरूपण करेंगे ही! यह उनका अहम् नहीं, पुरुषार्थ की प्रक्रिया है। भगवान महावीर ने कहा—**अप्पणा सच्चमेसेज्जा**—स्वयं सत्य खोजें। यह प्रेरणा प्रत्येक व्यक्ति के लिए है। वह उधार के सत्य से संतुष्ट न होकर स्वयं सत्य की खोज करे।

सत्य की खोज का मार्ग ही सही मार्ग होता है। तीर्थंकरों के लिए एक विशेषण आता है—**मग्गदयाणं**। वे नए मार्ग बनाते हैं और उन्हें संसार के लिए छोड़ देते हैं। उनके दिखाए हुए या बनाए हुए मार्ग पर चलने वाले एक दिन उस बिंदु पर पहुंच जाते हैं, जहां से वे नए मार्ग के निर्माण की क्षमता अर्जित कर लेते हैं।

मार्ग बनाने के लिए भी विशिष्ट समय की अपेक्षा रहती है। प्राप्त समय का सदुपयोग न करनेवाला उस पर अपना पदचिह्न नहीं छोड़ सकता। **इणमेव खणं वियाणिया**—उपलब्धियों का क्षण यही है। इसे पकड़कर नहीं रखा जा सकता है। करणीय को कर लेना ही, इसका मूल्यांकन करना है। नया वर्ष दरवाजे पर दस्तक दे रहा है। उसे जागरूकता से सुनें और समय के फलक पर ऐसे चिह्न अंकित करें, जो पीछे आने वालों को सही दिशा का बोध दे सकें। ऐसा वे ही कर पाएंगे—

* जो जैन जीवनशैली के सांचे में अपना जीवन ढालने का प्रयास करेंगे।
* जो अपने चिंतन और व्यवहार के दर्पण में अनेकांत के प्रतिबिम्ब उभार पाएंगे।
* जो सह-अस्तित्व के सिद्धांत को स्वीकार कर विरोधी विचारवाले लोगों के साथ भी शांति से रह सकेंगे।
* जो व्यक्तिगत स्वार्थ या महत्त्वाकांक्षा की पूर्ति के लिए किसी निरपराध की हत्या नहीं करेंगे।
* जो अपनी भावी पीढ़ी के संस्कार-निर्माण के लिए कोई रचनात्मक उपक्रम शुरू कर सकेंगे।
* जो अर्थहीन सामाजिक कुरूढ़ियों को छोड़ने में संकोच नहीं करेंगे।
* जो युवापीढ़ी में बढ़ रही नशे की प्रवृत्ति को नियंत्रित कर उसे नशामुक्त कर सकेंगे।

ये कुछ संकेत हैं, जो नए संकेतों को जन्म दे सकते हैं। नए संकेतों का जन्म तभी संभव है, जब सामने से भागते हुए समय का हाथ थामकर कुछ कर दिया जाए या करा लिया जाए।

समय किसी के साथ पक्षपात नहीं करता। वर्ष के महीने, महीने के दिन, दिन के घण्टे और घण्टे के मिनट या सेकंड सबको बराबर मिलते हैं। महत्त्वपूर्ण काम करने वालों का वर्ष बीस महीनों का नहीं होता और दिन तीस घण्टों का नहीं होता। वे समय का समुचित नियोजन कर उससे लाभ उठा लेते हैं। यह नव वर्ष हाथ से यों ही फिसल न जाए। इसके लिए समय रहते निश्चित लक्ष्य के साथ अपनी-अपनी समयसारिणी निर्धारित की जाए और वर्ष के प्रथम दिन से ही लक्ष्यप्राप्ति की दिशा में प्रस्थान हो जाए। इस क्रम से जो पदचिह्न अंकित होंगे, समय उनको मिटा नहीं पाएगा। ❑

संस्कार, जो मेरी मां ने दिए

मां वह शक्ति है जो किसी भी परिस्थिति को सहन कर अपनी संतति को पोषण देती रहती है। अपनी भूख, प्यास और नींद की परवाह किए बिना वह बच्चे की जिस रूप में परिचर्या करती है, अद्भुत बात है। उसकी सारी इच्छाएं-आकांक्षाएं बच्चे के जीवन-निर्माण और भविष्य को संवारने में सिमट जाती हैं। उसका अपना कोई सुख-दुःख ही नहीं रहता। कोई भी मां अपने सपनों के अनुरूप संतति का निर्माण करने में सफल हो जाती है तो उसे कितनी प्रसन्नता होती होगी!

मां अपने बच्चे को संस्कारी कैसे बनाती है? इस उदाहरण के लिए मैं स्वयं को प्रस्तुत कर सकता हूं। मुझे ऐसा अनुभव होता है कि मेरे जीवन में जितनी अच्छी बातें आईं, उनमें मातुश्री वदनाजी का बहुत बड़ा हाथ था। ग्यारह वर्ष की कच्ची अवस्था में खड्ग की धार के समान तीखे और कंटकाकीर्ण पथ पर चलने की उमंग क्या मां का संस्कार नहीं था? मुझे बहुत अच्छी तरह याद है अपना वह अबोध बचपन, जिसमें धर्मनिष्ठ महिला मातुश्री वदनाजी के धार्मिक संस्कार सहज रूप में संक्रांत हो गए थे।

प्रात:काल नींद से उठते ही वे हमें नमस्कार महामंत्र का जप करने की प्रेरणा देती थीं। साध्वियों के दर्शन करने, व्याख्यान सुनने, गोचरी के लिए भावना भाने आदि हर बात के लिए वे धैर्य और मधुरता के साथ कहतीं। स्वयं व्याख्यान सुनकर आतीं और उसमें हमारी रुचि को जागृत करने के लिए व्याख्यान में सुनी हुई कहानियां हमें बहुत अच्छे ढंग से सुनाती थीं। कुछ ही दिनों में उन्होंने हमारे मन में इतना रस भर दिया कि हम उनके व्याख्यान से लौटने की प्रतीक्षा करते। उनके चाबियों के गुच्छे की आवाज सुनते ही हम दौड़कर जाते और आग्रह करके उनसे व्याख्यान की बातें पूछते। वे उन बातों और कहानियों से हमें अच्छे संस्कार देने के लिए सदा प्रयत्नशील रहती थीं।

हम बच्चे उपवास करने से घबराते तो वदनाजी कहतीं—'तुम उपवास करोगे तो तुम्हें रात को बारह बजे उठकर दूध पिला दूंगी, भोजन करा दूंगी (दूसरे दिन उपवास करना हो तो बारह बजे के बाद भोजन करने की परंपरा नहीं है) सुबह सूरज निकलते ही 'पारणा' करवा दूंगी। उन्होंने हमको कभी उपवास करने के लिए बाध्य नहीं किया, पर उनकी प्रेरणा से उपवास करने की इच्छा रहती थी।

वदनाजी के जीवन में ऐसी अनेक बातें थीं, जिन्होंने मेरे मन को प्रभावित किया। उनमें प्रथम स्थान की अर्हता उनकी कोमलता और वात्सल्य को मिल सकती है। उनके इस वैशिष्ट्य से मैं इतना अभिभूत हुआ कि प्रशासनिक भूमिका पर मैं कितना ही कठोर बन जाऊं, फिर भी भीतर से कोमलता छूट नहीं पाती। मैंने उनको कठोर या उत्तेजित बनते बहुत कम देखा और जब कभी देखा तो उत्तेजना का प्रभाव क्षणिक रहा। बचपन में मुझे गुस्सा बहुत आता था। वह संस्कार वदनाजी का संस्कार तो नहीं था। अन्य किस व्यक्ति का संस्कार मेरे जीवन में संक्रांत हुआ, पता नहीं, पर मुझे याद है, गुस्से में मैं रूठ जाता, भोजन छोड़ देता, किसी भी बात को पकड़कर बैठ जाता। मेरी इस आदत से परिवार के अन्य सदस्य परेशान हो जाते, किंतु वदनाजी ने कभी कुछ नहीं कहा। वे मुझे प्यार से समझातीं, मनातीं और खाना देतीं। मनोविज्ञान उन्होंने पढ़ा नहीं था, पर उनका व्यवहार देखकर यह प्रतीत होता कि वे बच्चों को सहज मनोवैज्ञानिक पद्धति से संस्कार देती थीं।

सांसारिक दृष्टि से मैंने पिता का प्यार नहीं देखा। मैं जब बहुत छोटा था तभी वे दिवंगत हो गए थे। ज्येष्ठ भ्राता मोहनलालजी से हम बहुत डरते थे, इसलिए उनके पास जाने की हिम्मत ही नहीं होती थी। घर-परिवार में एकमात्र वदनाजी ही ऐसी थीं, जिनके स्नेहिल दुलार की छाया में हमारा जीवन बना। एक बार बचपन में मैंने (रामदेवजी के मंदिर में चढ़ाने के लिए) घर से नारियल की चोरी की। चोरी पकड़ी गई। मैं डांट के भय से

सिहर उठा और किसी ने कुछ भी कहा हो, पर वदनाजी ने उन क्षणों में भी मुझे स्नेह से वंचित नहीं रखा। उन्होंने वत्सलभाव उंडेलते हुए करणीय और अकरणीय का प्रतिबोध देते हुए कहा—'अच्छे बच्चों को ऐसा काम कभी नहीं करना चाहिए। बुरी बात का परिणाम बुरा होता है। अभी आदत बिगड़ जाएगी तो जीवन बन नहीं सकेगा।' यह तुझे करना है और यह नहीं करना है, ऐसा करने से ऐसा होता है—इस प्रकार यौक्तिक ढंग से जीवन की दिशा उपलब्ध होने पर व्यक्ति सहज रूप में बुराइयों से बचाव कर सकता है।

बचपन में वदनाजी से जो संस्कार मिले, वे तब तक मुझे दिशा-बोध देते रहे, जब तक मेरा अपना चिंतन विकसित नहीं हो गया। मैं पूज्य गुरुदेव कालूगणी की मंगलमयी छत्रछाया में नहीं आ गया। कालूगणी से भी मुझे मां—जैसी ममता मिली। उनके संस्कारों का भी मेरे जीवन पर सहज प्रतिबिंब है। अब मैं जब कभी इन ममतामय व्यक्तियों के बारे में सोचता हूं, अनौपचारिक श्रद्धा से विह्वल हो जाता हूं। हर मां और हर गुरु अपनी सन्तति और शिष्य को इसी प्रकार सद्संस्कारों का सिंचन देते रहें, जैसे मुझे उपलब्ध हुआ। ❑

निर्माण का सारा श्रेय मां के नाम

नाजी सेना का एक नौजवान सैनिक हिटलर की फौज में काम कर रहा था। साम्राज्य-विस्तार की लिप्सा ने हिटलर को आक्रांता बना दिया। उसकी सेना हॉलैंड, पोलैंड़ से चली और रूस, जापान तक पहुंच गई। सैनिकों ने गांवों और शहरों में लूट मचा दी। उस नौजवान सैनिक को भी लूटपाट के दौरान बहुमूल्य आभूषण प्राप्त हुए। उसने उन आभूषणों से एक डिब्बा भरकर अपनी मां के पास भेजा। उसे यह विश्वास था कि इतने कीमती जेवर पाकर मां खुश हो जाएगी, पर उसके आश्चर्य का ठिकाना न रहा, जब वह डिब्बा पुन: उसी के पास पहुंच गया। उसने डिब्बा खोला तो आभूषणों के ऊपर उसकी मां के हाथ से लिखी हुई चिट थी। उसने उत्सुकता के साथ उसे पढ़ना शुरू किया। उसमें लिखा था—

'प्रिय पुत्र!

तेरे मन में मेरे प्रति श्रद्धा और आदर की भावना है। तू मुझे सुख पहुंचाना चाहता है। शायद इसलिए यह आभूषणों से भरा डिब्बा मेरे लिए भेजा है, पर मैं इसे स्वीकार नहीं कर सकती। क्यों?

जहां तक मेरा विश्वास है, यह धन तेरे पसीने की कमाई का नहीं, चोरी किया हुआ है। न जाने कितनी माताओं और बहनों की आहें इसके साथ है। मैं चोरी का धन स्वीकार कर स्वयं को पतन के गर्त में गिराना नहीं चाहती। मैं चोर की मां कहलाना नहीं चाहतीं। मैंने अपने बेटे को देश की सेवा के लिए समर्पित किया है, चोर-डाकू बनने के लिए नहीं। एक देशभक्त पुत्र की मां बनने में मुझे जिस गौरव का अनुभव होगा, वह इस धन को स्वीकारने से कभी नहीं हो सकेगा।'

अपनी मां की इन बातों ने उस नौजवान सैनिक की आंखें ख़ोल दीं। उस दिन से उसने सब बुराइयों का परित्याग कर दिया और एक आदर्श सैनिक का उदाहरण प्रस्तुत किया। इस आदर्श जीवन के कारण वह देश के विशिष्ट व्यक्तियों की पंक्ति में खड़ा हो गया। एक बार किसी बहुत बड़े समारोह में वह अपने आदर्शों के कारण प्रशंसित, सम्मानित और पुरस्कृत हुआ। सम्मान के उत्तर में बोलते समय उसने कहा—'मैं आज जो कुछ बना हूं, उसमें मेरा कुछ नहीं है। यह सारा श्रेय मेरी मां को है। किसी विशिष्ट व्यक्ति ने इस संबंध में जिज्ञासा की तो उसने पूरा घटनाचक्र कह सुनाया। उस दिन हजारों-हजारों लोगों ने प्रत्यक्ष अनुभव किया कि संस्कार-निर्माण की दिशा में एक मां कितनी प्रेरक बनती है। ❑

मेरी आकांक्षा : मानवता की सेवा

मन में जिज्ञासा जागती है कि युगपुरुष आचार्य तुलसी जिस युग में जनमे थे, वह युग कैसा होगा? उस वक्त परिवार, समाज, देश और राष्ट्र का चेहरा और चरित्र कैसा था? कैसा होगा जीवन दर्शन और जीवनशैली? कैसी होगी परम्पराएं, रीति रिवाज और कैसे होंगे विचार और संस्कार? परतंत्रता की जंजीरों से बन्दी बनी सामाजिकता को और भारत की आत्मा को देखने वालों में किसे तलाशा जाए, जो बता सके कि आचार्य तुलसी के जीवन में विचार क्रान्ति के बीज किसने कैसे बोए, जिसकी वजह से वे धर्म क्रान्ति के मसीहा बनकर सामने आए।

तलाशते सन्दर्भों में स्वयं आचार्य तुलसी का लिखा एक दस्तावेज पढ़ने को मिला, जिसमें आंखों देखी, कानों सुनी और जीयी गई स्वयं की वे प्रस्तुतियां हैं जो सच को उजागर करती हैं-

मेरा जन्म उस समय हुआ जब अंग्रेजी राज्य पूरे प्रभाव पर था। उस समय आम जनता अपने आपको अंग्रेजी शासन में सुखी महसूस कर रही थी। शताब्दियों की राजनीतिक दासता के कारण न्याय, स्वतंत्रता और समानता के स्वर मंद हो चुके थे। उन्नीसवीं सदी में कुछ व्यक्तियों ने साहस करके आवाज उठाई थी, पर तब तक जनमत जागृत नहीं हुआ था। लोकतंत्र और समाजवाद के संदर्भ में कभी जोरदार बहस नहीं हुई थी। इसलिए न तो किसी की आंखों में भारत की स्वतंत्रता का सपना था और न ही उस सपने को साकार करने की बेचैनी थी। जिस दिन भारत की धरती पर विदेशी सत्ता ने पहला कदम रखा, उस दिन भारतीय लोगों की मानसिकता कैसी थी? पर धीरे-धीरे वे विदेशी दासता को झेलने के अभ्यस्त हो गए थे। उस समय भारत के वायसराय लार्ड हार्डिंग का देश पर जबरदस्त प्रभाव था। इस प्रभाव का एक कारण था वायसराय का उदारतावादी दृष्टिकोण। उसने कांग्रेस और मुस्लिम लीग दोनों संस्थाओं को अपने निकट लेने का प्रयत्न किया। राष्ट्रीय कांग्रेस की स्थापना सन् 1885 में हो चुकी थी, किंतु बीसवीं शताब्दी में प्रवेश करने के बाद राष्ट्रीय आंदोलन के इतिहास में गहरी खामोशी छा गई थी। शायद वह आनेवाले तूफान से पहले की खामोशी थी। सन् 1914-18 के बीच दो महत्त्वपूर्ण घटनाएं घटीं–प्रथम विश्वयुद्ध तथा भारत की राजनीति में महात्मा गांधी का उदय। इन दोनों घटनाओं का भारत की राष्ट्रीय स्थितियों पर गहरा प्रभाव पड़ा। उस समय की राजनीतिक, सामाजिक एवं राष्ट्रीय गतिविधियों में मेरी कोई सक्रिय साझेदारी नहीं थी। फिर भी मैं जानता हूं कि यह सब मेरे जमाने में घटित हो रहा था।

राष्ट्रीयता की नई लहर

प्रथम विश्वयुद्ध के बाद भारतीय लोगों में राष्ट्रप्रेम की एक नई लहर आई। गांधीजी कांग्रेस के साथ जुड़े और एक व्यापक जन-आंदोलन शुरू हो गया। गांधीजी अपने ढंग के एक ही व्यक्ति थे। एक ओर अहिंसा के प्रति उनकी प्रगाढ़ आस्था, दूसरी ओर राष्ट्र के प्रति अगाध प्रेम। उन्होंने दो में से एक रास्ते को चुनना पसंद नहीं किया। उनका संकल्प था–'अहिंसा के बल पर राष्ट्र को स्वतंत्र कराना।' उनके आगमन से देश की राजनीति में नई चेतना का संचार हुआ, नई सोच का विकास हुआ और उसकी क्रियान्विति के लिए नए-नए उपायों

की खोज हुई। पूरे देश में स्वतंत्रता की आवाजें गूंज उठीं। सन् 1929 में असहयोग आंदोलन का सूत्रपात व्यापक जन-संघर्ष के रूप में सामने आया। देश की युवा पीढ़ी आंदोलन के साथ जुड़ी। हजारों लोग जेलों में गए। वहां उन्हें शारीरिक एवं मानसिक यातनाएं झेलनी पड़ीं। फिर भी पूरे देश में आजादी की चेतना जागृत हो चुकी थी। यह उस समय की बात है, जब अंग्रेजों की शक्ति निखार पर थी। उनके राज्य में सूर्य अस्त नहीं होता था और किसी को यह भरोसा नहीं था कि भारत अपने पांव पर खड़ा होकर स्वतंत्र रूप से काम कर सकता है। ये सब घटनाएं मेरे देखते-देखते घटित हुईं। इनमें मेरी भागीदारी का जहां तक सवाल है, उस समय तक मैं अपनी उम्र के उस मोड़ तक नहीं पहुंचा था, जहां से छलांग भरकर कुछ कर पाता, किंतु भीतर-ही-भीतर ऐसी भावनाएं जन्म ले चुकी थीं, जो मुझे व्यक्ति और परिवार की सीमाओं से ऊपर उठाकर राष्ट्र के बारे में सोचने के लिए सचेत कर रही थीं।

सतह पर शांति, तल पर ज्वालामुखी

एक ओर अंग्रेजों का स्थापित वर्चस्व, दूसरी ओर आंतरिक वर्चस्व के आधार पर स्वतंत्रता की लड़ाई करने के लिए उद्यत सेनानी। अंतर्द्वंद्व दोनों तरफ था। सत्ता के शीर्ष पर खड़े लोग वहां से हटने की मानसिकता में नहीं थे और राष्ट्रीय प्रेम के गलियारे में खड़े लोग सत्य और अहिंसा के सोपान पर चढ़कर अपने राष्ट्रीय एवं सांस्कृतिक मूल्यों को संरक्षण देने के लिए कृतसंकल्प थे। सत्ता के दरवाजे से हिंसा बाहर आई और उसने जनभावना को कुचलने के साथ-साथ जनता को कुचलना शुरू कर दिया। राष्ट्रवादी लोगों की हिंसा के साथ सहमति नहीं थी। उन्होंने गांधीजी के नेतृत्व में असहयोग आंदोलन को तीव्र किया, सत्याग्रह आंदोलन शुरू किया और 'भारत छोड़ो' आंदोलन में अपनी संपूर्ण शक्ति का नियोजन कर दिया। देश में उथल-पुथल मच गई। बड़ी-बड़ी सभाएं आयोजित होने लगीं। बीस-तीस हजार लोगों की वे सभाएं संख्या की दृष्टि से ही नहीं, भावना की दृष्टि से भी बहुत महत्त्वपूर्ण थीं। शहरों से लेकर गांवों तक उन सभाओं की चर्चा थी। उनके अनुकरण में छोटे-छोटे बच्चे भी अपने संगठन बनाकर आजादी की लड़ाई लड़ने के लिए उतावले हो उठे थे। ये सब स्थितियां मैंने अपने जमाने में देखीं, सुनीं। उन दिनों की राजनैतिक उथल-पुथल ने मेरे मन में एक-दूसरे प्रकार की उथल-पुथल मचा दी। उससे मैं इतना अधिक प्रभावित हुआ कि घर और परिवार छोड़कर साधु बन गया। पूज्य गुरुदेव कालूगणी के चरणों में स्वयं को समर्पित कर मैंने आध्यात्मिक ऊर्जा प्राप्त की। उस ऊर्जा को और अधिक बढ़ाने एवं जनहित में उसका उपयोग करने का एक नन्हा-सा संकल्प मेरे मन में जाग उठा था।

मैं उस संकल्प को पोषण देता हुआ आगे बढ़ रहा था। ग्यारह वर्ष का समय कब पूरा हो गया, कुछ पता ही नहीं चला। गुरुदेव की निकट सन्निधि का दुर्लभ समय मेरे व्यक्तित्व-निर्माण का महत्त्वपूर्ण समय था। गुरुदेव की अमृत दृष्टि में मेरा छोटा-सा प्रतिबिंब बना और अचानक ही वे मुझे छोड़कर चले गए। उनका स्वर्गारोहण मेरे युवा कंधों पर एक विशाल धर्मसंघ के नेतृत्व का बोझ आहिस्ता से रखा गया। उस समय सब कुछ अपनी जगह पर पूर्ववत् स्थिर था। केवल गुरुदेव का साया नहीं था। राजनीतिक हलचल के उस माहौल में मैंने एक नया दायित्व ओढ़ा। मेरे दिमाग में भी कुछ हलचल थी, पर उसे अभिव्यक्ति देने के लिए जिस वातावरण की जरूरत थी, वह सामने नहीं था। इसलिए मैं भीतर-ही-भीतर अत्यंत सक्रिय होने पर भी ऊपर से बिलकुल शांत था। सतह पर शांति और तल पर ज्वालामुखी जैसी स्थिति थी उस समय।

स्वतंत्रता की प्राप्ति

तब तक राष्ट्रवादी आंदोलन ने उपनिवेशवाद की जड़ों को खोदना शुरू कर दिया था। पंचायत व्यवस्था को मजबूत बनाने का प्रयत्न किया गया। अधिकांश लोगों को यह विश्वास होता जा रहा था कि हिंदुस्तान एक दिन स्वतंत्र होकर रहेगा, किंतु कुछ लोग ऐसे भी थे, जिनकी आस्था अंग्रेजी शासन में थी। हिंदुस्तान लोग या कांग्रेस जन शासन-सूत्र संभालने में सफल हो सकेंगे, ऐसा वे सोच ही नहीं पा रहे थे। फिर भी आंदोलन अपनी गति से चल रहा था। आखिर अंग्रेजों के पांवों के नीचे से जमीन खिसकने लगी। उन्हें भारत छोड़कर पुनः अपने

देश लौटना पड़ा। सन् सैंतालीस के वे ऐतिहासिक लमहें भारतवासियों के स्वर्णिम लमहें थे, जब कई सौ वर्षों की राजनीतिक दासता भोगने के बाद भारत ने स्वतंत्रता की सांस ली थी। महात्मा गांधी ने अहिंसा के आधार पर देश को आजाद कर एक मिसाल कायम की थी। देशवासी खुशियों से झूम उठे थे। एक समय आया जब लौहपुरुष सरदार पटेल ने लगभग सभी देशी रियासतों का एकीकरण कर एक अखंड भारत का स्वरूप उजागर कर दिया था। यह काम अपने आप में एक महाभारत ही था। सरदार वल्लभभाई पटेल ने इस महाभारत को जीतकर इतिहास को एक नया मोड़ दिया। यह सब मैंने अपनी आंखों से देखा था, कानों से सुना था।

सामाजिक परिस्थिति

देश की आजादी के समय समाज में पंचायतों का काफी प्रभाव था। चिन्तनशील लोगों की पंचायत व्यवस्था के बारे में मिश्रित प्रतिक्रिया थी। कुछ लोग उसमें अच्छाई देख रहे थे। कुछ लोगों को बुराई-ही-बुराई नजर आ रही थी। वैसे हर व्यवस्था में अच्छाई-बुराई के अंश विद्यमान रहते हैं। उस समय पंचायत के आदेश बिना कोई भी व्यक्ति कोई बड़ा काम नहीं कर सकता था। शादी-विवाह आदि के प्रसंग में कौन व्यक्ति कितना खर्च करे, यह व्यवस्था पंचायत द्वारा निर्धारित होती थी। पंच संबंधित व्यक्ति की आर्थिक स्थिति का अध्ययन करने के बाद उसे व्यवस्था दिया करते थे।

उस समय समाज में जैसे संस्कार थे, विदेशी संस्कृति के प्रति नफरत के भाव थे। कोई हिंदुस्तानी विदेश चला जाता, उसे पंचायत के द्वारा जाति से बहिष्कृत कर दिया जाता था। उसके साथ रोटी-बेटी का व्यवहार बंद कर दिया जाता था। नजदीकी रिश्तों में इतनी गहरी दरार पड़ जाती कि भाई-भाई बेगाने बन जाते थे।

समाज में बाल-विवाह का प्रचलन अधिक था। छोटे-छोटे बच्चों की शादियां कर दी जाती थीं। बच्चों को थाली में बिठाकर शादी की रस्म पूरा करने की परंपरा भी प्रचलित थी। इसी प्रकार वृद्ध विवाह पर भी कोई अंकुश नहीं था। संपन्न व्यक्ति किशोरियों के साथ विवाह रचाते, फिर भी उनके विरोध में कोई आवाज नहीं उठती थी।

स्त्री की दशा बहुत उन्नत नहीं थी। उसे शिक्षा का कोई अधिकार नहीं था। विशेष रूप से राजस्थान में तथा अन्य प्रदेशों के देहातों-गांवों में स्त्रियों को भोग्य सामग्री से अधिक महत्त्व नहीं दिया जाता था। चमकीले-भड़कीले परिधान और आभूषणों के व्यामोह में उनका चिन्तन भी कुंठित था। ससुराल के मुहल्ले में प्रवेश करते ही उसे अनिवार्य रूप से पर्दे में रहना पड़ता था। ससुर, जेठ आदि कहीं बैठे हों तो उनके आगे से वे उस रास्ते को पार नहीं कर सकती थीं।

पति की मृत्यु के बाद विधवा स्त्री की जो दुर्दशा होती, आज तो उसकी कल्पना ही नहीं की जा सकती है। उसे वर्षों तक घर के कोने में अपनी जिंदगी बितानी पड़ती। काले वस्त्र पहनना उसकी नियति बन जाती। उसकी सारी हंसी-खुशी छीन ली जाती। घर में किसी भी शुभ या मंगल कार्य के अवसर पर उसकी उपस्थिति को अपशकुन माना जाता। न जाने कितनी शारीरिक और मानसिक यातनाएं उसे विवश होकर झेलनी पड़ती थीं।

मृत्युभोज उस समय सामाजिक प्रतिष्ठा का प्रश्न बना हुआ था। जीते-जी मां-बाप की सेवा करते या नहीं, मरने के बाद भोजन जरूरी था। जिनकी आर्थिक स्थिति ठीक नहीं होती, वे सिर पर कर्ज लेकर भी मृत्युभोज की परंपरा को निभाते थे और स्वयं को गौरवशाली अनुभव करते थे। अन्य अनेक प्रकार की सामाजिक कुरूढियों का दबदबा था। यह सब मैंने बहुत नजदीक से देखा है।

धार्मिक वातावरण

बहुत ही विचित्र स्थिति थी उस समय की। कोई भी समाज-सुधारक समाज व्यवस्था को बदलने की बात करता, उसका मुंह बंद कर दिया जाता था। जो नेता इस संबंध में थोड़ी-सी भी आवाज उठाते, उनको टिकने नहीं दिया जाता था। साधु-साध्वियां भी रूढ सामाजिक परंपराओं के कट्टर समर्थक थे। यदि कोई बहन घूंघट हटाने की बात करती तो उसे कड़ी डांट सुननी पड़ती थी। विधवा स्त्री स्थापित मानदंड से इधर-उधर कदम रख देती तो उसे व्यंग्य-बाणों से बींध दिया जाता था।

धर्म की स्थितियों में भी मैंने बहुत उतार-चढ़ाव

देखे हैं। उस समय धर्म रूढ धारणाओं में कैद हो चुका था। उसमें क्रियाकांड प्रधान हो गए और आचार-तत्त्व गौण हो गया। इस क्रम में किसी प्रकार के बदलाव की कोई गुंजाइश नहीं थी। अनेक विचारशील लोग धर्म के इस खोखलेपन को समझते थे, पर उसके विरोध में एक भी शब्द बोलने की स्थिति नहीं थी। जो कुछ जिस ढंग से चल रहा है, उसे वैसे ही चलने दिया जाए तो ठीक अन्यथा बागी होने का खिताब तैयार था। ऐसी परिस्थिति में नई बात सोचना और उसकी क्रियान्विति के लिए कदम उठाना, बहुत ही साहस की बात थी।

भविष्य का चिन्तन

उन दिनों मैं विचित्र प्रकार के मानसिक द्वंद्व को पाल रहा था। मेरे कंधों पर विशाल धर्मसंघ का दायित्व था। संघ के सर्वांगीण विकास की जिम्मेवारी मुझ पर थी। सामाजिक परिवेश मुझे सोचने के लिए विवश कर रहा था। इधर नैतिक मूल्यों का तकाजा था तो उधर मानवीय दृष्टिकोण से काम करने की प्रेरणा जाग चुकी थी। महात्मा गांधी पर जिस ढंग से गोली दागी गई, मानवता चीत्कार उठी। गांधीजी के जाने से देश के भीतर जो महाशून्य पैदा हो गया था, उसे भरनेवाला भी कोई दिखाई नहीं दे रहा था। कुल मिलाकर मैं बहुत असमंजस में था। जो स्थिति मेरे सामने थी, उसे यथावत रखकर चलना कोई कठिन काम नहीं था, पर उसे बदलना मोम के दांतों से लोहे के चने चबाना था। उस द्वंद्वात्मक स्थिति में मेरा साथ देनेवाले साधु-साध्वियां और सामाजिक कार्यकर्ता कहां थे? जो दो-चार लोग थे, उन्हीं को सामने रखकर मैंने चिन्तन किया। भारत के भविष्य का चिन्तन। उसके सामाजिक ढांचे का चिन्तन। मैं देख रहा था कि प्रवाह को रोका जाएगा तो वह रुकेगा नहीं। समय का प्रवाह इतना तीव्रगामी है कि वह इमारतों को उखाड़कर फेंक देगा, पर अपना रास्ता अवश्य बनाएगा। ऐसी स्थिति में परिवर्तन समय की मांग है। चिन्तनपूर्वक परिवर्तन करनेवाला आगे बढ़ जाएगा।

दो स्थितियों के बीच में

मैं जिस धर्मसंघ का नेतृत्व कर रहा हूं, वह जैन श्वेतांबर तेरापंथ धर्मसंघ के नाम से पहचाना जाता है। एक आचार्य का नेतृत्व और एक संविधान का पालन- अन्य जैन संघों से इसकी स्वतंत्र पहचान है। इस धर्मसंघ में आचार्य 'सर्वोपरि' होते हैं। वर्तमान में वह बदलाव के अनेक मोड़ों को पार कर प्रगति के पथ पर अपनी गति से बढ़ रहा है, किंतु उस समय यह पूरी तरह से कट्टर और पुराणपंथी था। न शिक्षा का आधुनिक विकास और न नई प्रवृत्तियां। पूर्वाचार्यों द्वारा खींची गई लकीरों पर चलना—इसी मानसिकता को प्रशस्त माना जाता था। मारवाड़ी में बोलना और लिखना—इतना-सा क्रम था। न साहित्य और न किसी नए सृजन की तैयारी। यद्यपि हमारे पूर्वाचार्यों ने अपने-अपने समय में काफी काम किया और उत्तरवर्ती आचार्यों को काम करने का पूरा अवकाश दिया, किंतु समाज की मानसिकता कभी यह नहीं रही कि कोई आचार्य नई लकीरें खींचे तो उनको सहजता से स्वीकार कर ले। विरोध और वितर्कणा के बाद आचार्यों का चिन्तन मान्य होता रहा है, पर प्रारंभ में कठिनाइयां कम नहीं आतीं।

उस समय मेरे सामने दो स्थितियां थीं-विरासत से प्राप्त अनुशासित एवं संगठित धर्मसंघ की सुरक्षा करना तथा धर्मसंघ की मौलिकता को सुरक्षित रखते हुए उसे युगीन विकास की दिशा देना।

इन दोनों स्थितियों के साथ एक नया दृष्टिकोण सामने आया। उसके अनुसार हमें तेरापंथ समाज तक ही सीमित न रहकर व्यापक संदर्भों में काम करना था, पूरी मानव जाति को आध्यात्मिक पथदर्शन देना था। दृष्टिकोण बहुत प्रशस्त था, पर काम इतना सरल नहीं था। उसके लिए हमारी समुचित तैयारी भी नहीं थी। एक ओर वातावरण अनुकूल नहीं था तो दूसरी ओर साधु-साध्वियों व कार्यकर्ताओं का निर्माण नहीं हुआ था। ऐसी स्थिति में इतना बड़ा काम हाथ में लेना जोखिम भरा कदम उठाना था, किंतु मैंने निर्णय कर लिया कि परिस्थितियों की अनुकूलता की प्रतीक्षा में समय जाया किए बिना हमें काम शुरू कर देना चाहिए।

अपने निर्णय की क्रियान्विति से पहले मैंने समाज को चिन्तन देना शुरू किया—शरीर की स्वस्थता और सुरक्षा के लिए मनुष्य को ऋतु के अनुसार परिवर्तन करना पड़ता है। वह अपनी वेशभूषा बदलता है, खानपान बदलता है, रहन-सहन बदलता है और दिनचर्या

बदलता है। यह बदलाव न हो तो शरीर स्वस्थ नहीं रह सकता। धर्मसंघ के स्वास्थ्य और विकास के लिए भी यह आवश्यक है कि हम मूल को सुरक्षित रखते हुए विवेकपूर्ण परिवर्तन करें।

जिस समय मैंने धर्मसंघ के सामने उक्त विचार प्रकट किए, मेरे पास एकमात्र गुरुकृपा का संबल था। उसके सहारे मैंने चिन्तन को विस्तार दिया और विरोधों-अवरोधों के बावजूद मुझे अपने सम्पूर्ण धर्म-परिवार का सक्रिय सहयोग मिला। उस सहयोग से मेरी कार्यक्षमता बढ़ी और एक के बाद एक नए-नए कार्यों का प्रारंभ होता गया।

मानवता के लिए समर्पण

तब से अब (सन् 1914-1987) तक मैंने जो कुछ देखा, समझा, अनुभव किया और काम किया, वह एक-एक कर मेरी आंखों के सामने आ रहा है। कहां वह छोटा-सा दायरा और कहां यह व्यापकता! कहां वे जीवन के रास्ते में आने वाले आरोह-अवरोह और कहां यह सीधा राजपथ! कहां वे ठहराव के क्षण और कहां यह जीवंत आंदोलन! कहां वह कल्पनाओं की खूबसूरती और कहां कष्ट, संघर्ष व आशा-निराशा के सम्मिश्रण से जनमी हुई कठोरता। इन सबको देखते-देखते संवेदनाओं का एक अथाह सागर मेरे सामने लहरा रहा है। आज जो कुछ मैं देख रहा हूं, कर पा रहा हूं, उसके पीछे गहरी तपस्या और साधना है। कितनी कठिनाइयों को पार कर मैं आज इस स्थिति में पहुंचा हूं। उस समय अगर मैं कठिनाइयों में उलझ जाता तो आगे नहीं बढ़ पाता, काम नहीं कर पाता। वर्तमान की उलझन भविष्य को संवार जाती है, ऐसा मुझे दृढ़ विश्वास हो गया है।

उलझनें अब भी आती हैं, पर आज स्थिति दूसरी है। उस समय हमारे कार्यक्रमों की मजाक होती थी, आज उनका राष्ट्रीय स्तर पर मान्यता मिल चुकी है। मेरी आकांक्षाएं अभी तक पूर्ण नहीं हुई हैं। मैं जब तक जीवित रहूं, मानवता के लिए समर्पित रहकर जीऊं और अविश्रांत भाव से काम करता रहूं, यह मेरी बड़ी आकांक्षा है। मैं जानता हूं कि समय को किसी लॉकर में बंद करके रखा नहीं जा सकता। यह अपनी गति से बहता रहेगा। मेरी जीवनयात्रा के इस बहाव में किसी भी मोड़ पर ऐसा ठहराव न आए, जहां मैं मानवता की सेवा से वंचित रह जाऊं। अपनी पूरी जिंदगी को मानवता के लिए समर्पित कर मैं निश्चिंत हूं। मानव-मानव के सुख-दुःख की जीवंत भागीदारी को महसूसता हुआ मैं अपने जीवन के अग्रिम वर्ष को अधिक सक्रिय देखना चाहता हूं। ❑

प्रदर्शन नहीं, पुरुषार्थ करें

राबिया नामक एक मुस्लिम महिला हुई है। बड़े-बड़े फकीर भी उसके आगे झुक जाते थे। हसन नामक एक मुल्ला ने जब राबिया की महिमा सुनी तो वह ईर्ष्या से जल उठा। वह नहीं चाहता था कि एक महिला उससे अधिक प्रसिद्धि पाए। एक दिन राबिया अपनी भक्त-मण्डली के साथ आ रही थी। हसन भी अपनी शिष्य-मण्डली के साथ उधर से जा रहा था। उसने यह अच्छा अवसर समझा अपनी चामत्कारिक विद्या से राबिया को परास्त करने का।

हसन नदी के तट पर खड़ा था। उसने अपना मुसल्ला (एक आसन, जिस पर बैठकर नमाज पढ़ी जाती है) उठाया और नदी की बहती धार में उसे बिछाते हुए कहा-आओ राबिया, इस पर बैठकर नमाज पढ़ें। उपस्थित जनसमूह चमत्कृत था हसन के इस चमत्कार से। पर राबिया को यह समझते देर न लगी कि इसके सिर पर अभिमान का भूत सवार है। यह मुझे पराजित करना चाहता है। राबिया ने बिना किसी आधार के हवा में अपना आसन बिछाते हुए कहा-'हसन साहब, पानी के जीव-जन्तुओं को क्यों तकलीफ दें, आइए! मुक्त आकाश में बैठकर नमाज पढ़ें। बस, अब क्या था? हसन का अहं चूर-चूर हो गया।

*राबिया ने हसन की अंतश्चेतना को उद्बुद्ध करते हुए कहा—**'हसन साहब! पानी पर आसन बिछाकर आपने नई बात नहीं की, एक मछली भी ऐसा कर सकती है और हवा में आसन बिछाकर मैंने भी कोई बड़ा चमत्कार नहीं किया, एक मक्खी भी ऐसा कर सकती है। हमारा लक्ष्य चमत्कार-प्रदर्शन नहीं है। हमारी साधना तो तब सफल होगी जब हम अपने पुरुषार्थ से अपनी आत्मा को जागृत करेंगे।***

ऐसे मिला मुझे अहिंसा का प्रशिक्षण

अहिंसा का पहला बोधपाठ

मैंने ग्यारह वर्ष की अवस्था में पूज्य कालूगणी के पास जैन मुनि की दीक्षा स्वीकार की। जैन मुनि की दीक्षा का पहला व्रत है अहिंसा और पांचवां व्रत है अपरिग्रह। दीक्षा स्वीकार करते ही पूज्य कालूगणी ने प्रतिबोध देते हुए कहा-'अब तुम मुनि बन गए हो। मुनि को हर काम जागरूकता से करना होता है। तुम्हारा हर पग जागरूकता के साथ उठे, इस दृष्टि से तुम्हें हर क्षण जागरूक रहना है। चलते समय तुम्हें देखकर चलना है, इसलिए कि तुम्हारे पैर के नीचे आकर कोई छोटा-सा जन्तु भी मर न जाए। बोलते समय तुम्हें जागरूकता के साथ बोलना है, इसलिए कि तुम्हारे शब्दों से किसी को आघात न पहुंचे। भोजन के समय तुम्हें जागरूकता से भोजन करना है, इसलिए कि तुम किसी दूसरे का अधिकार न छीन लो। तुम्हारी आस्था संविभाग में रहेगी, इसलिए कि तुम अकेले ही किसी वस्तु के स्वामित्व का दावा न करो। तुम्हें न किसी पदार्थ के प्रति मूर्च्छा करना है और न किसी प्राणी के प्रति अभिद्रोह।' मैंने मुनि बनते ही पूज्य कालूगणी से अहिंसा का यह पहला बोधपाठ पढ़ा। इससे अहिंसा में मेरी आस्था पुष्ट हुई। आस्था की वह प्रतिमा आज तक कभी भी खण्डित नहीं हुई।

अहिंसक का व्यवहार

दीक्षा स्वीकार करने के एक सप्ताह बाद मैंने दशवैकालिक सूत्र का पाठ शुरू किया। उसमें पढ़ा—संयम से चलो, संयम से खड़े रहो, संयम से बैठो, संयम से सोओ, संयम से खाओ और संयम से बोलो।

जीवन की प्रत्येक क्रिया का सम्पादन संयम से हो, इस बोध पाठ के साथ ही मुझे बताया गया- बिना प्रयोजन प्रकृति के किसी पदार्थ से छेड़छाड़ मत करो। उसका अपव्यय मत करो, क्योंकि संयम का साधक किसी भी वस्तु का दुरुपयोग नहीं कर सकता।

मैंने तीसरा पाठ पढ़ा-'पुढो सत्ता'—प्रत्येक प्राणी का अस्तित्व स्वतंत्र है। इसलिए तुम्हें किसी को सताने, चोट पहुंचाने और आहत करने का अधिकार नहीं है। किसी प्राणी पर हुकूमत करने और दास बनाने का भी अधिकार नहीं है। कोई व्यक्ति किसी को सताता है, चोट पहुंचाता है, आहत करता है, किसी पर हुकूमत करता है या किसी को दास बनाता है, यह उसकी अनधिकार चेष्टा है। ऐसी चेष्टा करने वाला व्यक्ति अहिंसक नहीं हो सकता है।

संस्कारों की विरासत

मैंने पूज्य कालूगणी से कोरा सिद्धांत ही नहीं पढ़ा, मुझे उनके जीवन-व्यवहार से अहिंसा का सक्रिय प्रशिक्षण मिला। वे कभी दूसरे सम्प्रदाय के प्रति आक्षेप नहीं करते थे। ये संस्कार उन्हें विरासत में मिले थे। भगवान महावीर के समय में भी यह सिद्धांत प्रयुक्त होता था। आर्द्रकुमार ने आजीवक सम्प्रदाय के आचार्य गोशालक से कहा—'मैं किसी व्यक्ति की गर्हा नहीं कर रहा हूं। मैं केवल उस विचार की गर्हा कर रहा हूं, जो वांछनीय नहीं है।'

आचार्य भिक्षु ने इस सिद्धांत को आत्मसात् किया। उन्होंने किसी भी व्यक्ति या सम्प्रदाय की आक्षेपात्मक आलोचना नहीं की। पूज्य कालूगणी ने उसी परम्परा को सजीव बनाए रखा। उन्होंने शास्त्रार्थ के समय आवेश से बचने का परामर्श दिया। वे कहते थे—'शास्त्रार्थ के समय उत्तेजित होना पराजय का पहला लक्षण है। आवेशपूर्ण धर्म-चर्चा भी हिंसा है।' उनकी शांति और मृदुता ने मेरे मानस पर बहुत प्रभाव छोड़ा। उन्होंने मुझे जो कुछ सिखाया, व्यवहार में वैसा ही करके दिखाया। कथनी और करनी की यह संवादिता अहिंसा की विशिष्ट फलश्रुति है। अहिंसा का साधक कटु सत्य भी नहीं बोल सकता, फिर वह कटु आक्षेप कैसे लगा सकता है? इस बोधपाठ ने मुझे संयत और संतुलित रहना सिखाया।

अहिंसा की पृष्ठभूमि

अहिंसा और सत्य दोनों एक-दूसरे के पर्याय हैं। अहिंसा के बिना सत्य नहीं हो सकता और सत्य के बिना अहिंसा नहीं हो सकती। सत्य की अनुपालना के लिए मुझे प्रशिक्षण मिला-'डरो मत। न बुढ़ापे से डरो, न रोग से डरो। न शोक-संताप से डरो और न मौत से डरो। भूत-प्रेत उसी को सताते हैं, जो डरता है। डरा हुआ व्यक्ति भय से निस्तार नहीं पा सकता। वह तप और संयम को भी छोड़ देता है।' मैंने अपने गुरुवर से अभय का बोधपाठ पढ़ा, तब मैं समझ सका कि अभय पीठिका है– अहिंसा और सत्य की। इसके बिना अहिंसा और सत्य की कल्पना ही नहीं की जा सकती।

जिस व्यक्ति का परिग्रह या पदार्थ-संग्रह के प्रति मोह होता है, वह अभय नहीं हो सकता। उस अवस्था में अहिंसा कैसे होगी? भय अपने आप में हिंसा है। डराना हिंसा है तो डरना भी हिंसा है। इसलिए न डरो और न डराओ। यह अभय का उभयपक्षीय सिद्धांत है। अपरिग्रह का मूल्य इसीलिए है कि उसके बिना अभय की बात कभी सम्भव नहीं होती। पदार्थ के प्रति मूर्च्छा होती है, तभी उसके साथ भय उपजता है और उसकी प्राप्ति में हिंसा होती है। मरने का भय भी इसीलिए है कि शरीर के प्रति मूर्च्छा रहती है। मूर्च्छा अपने आप में परिग्रह है।

हिंसा और परिग्रह को कभी विभक्त करके नहीं देखा जा सकता। इसी प्रकार अहिंसा और अपरिग्रह को विभक्त नहीं किया जा सकता। ये सब बातें मुझे पूज्य कालूगणी से सीखने को मिलीं।

अभय का प्रशिक्षण

अहिंसा की पृष्ठभूमि है अभय और उसका सुरक्षा-कवच है सहिष्णुता। पूज्य कालूगणी ने अपने जीवन-व्यवहार से इन दोनों का प्रशिक्षण दिया। उन्होंने अभय और सहिष्णुता का अनुत्तर विकास किया था। मेरे लिए वह सहज बोधपाठ बन गया।

एक दुर्घटना टली

मुझे आचार्य बने एक-सवा वर्ष ही हुआ था। उस वर्ष का चातुर्मास बीकानेर था। चातुर्मास सम्पन्न होने पर मैं विहार कर रहा था। साथ में हजारों लोगों की भीड़ थी। जैसे ही मैं बीकानेर की 'लाल कोटड़ी' से बाहर मुख्य सड़क पर आया, सामने से एक दूसरे सम्प्रदाय के आचार्य का जुलूस आ गया। रांगड़ी चौक में हम आमने-सामने थे। कौन किसके लिए रास्ता छोड़े? ऐसी फुसफुसाहट शुरू हो गई। सामने का वातावरण आवेश और उत्तेजना से भरा हुआ था। उस पक्ष से रास्ता छोड़ने की कल्पना ही नहीं की जा सकती थी।

इधर इस पक्ष के लोगों में भी उत्तेजना बढ़ने लगी। उनके होठों से फिसलते कुछ स्वर मेरे कानों तक पहुंचे- 'हम रास्ता क्यों छोड़ें? क्या हम कमजोर हैं?' तेरापंथ समाज के अत्यधिक प्रभावशाली श्रावक ईश्वरचन्दजी चोपड़ा नहीं चाहते थे कि रास्ता छोड़ें। मैंने सारी स्थिति का आकलन किया और एक निष्कर्ष पर पहुंच गया। लोग आपस में बतिया रहे थे, और मैं रांगड़ी चौक की ओर मुड़ गया। चाहे-अनचाहे सब लोग मेरे पीछे-पीछे आ गए। एक दुर्घटना होते-होते टल गई।

महाराजा गंगासिंहजी के पास यह संवाद पहुंचा। उन्होंने स्थिति की जानकारी पाकर उस पर टिप्पणी करते हुए कहा–'आचार्य तुलसी अवस्था में छोटे हैं, पर उन्होंने काम बहुत बड़ा किया है। ऐसा करके उन्होंने बीकानेर की शान रख ली। यदि वे ऐसा नहीं करते, तो न जाने कितने लोग कुचले जाते, मर जाते और एक भारी हंगामा हो जाता।' मैं अनुभव करता हूं कि पूज्य कालूगणी के बीकानेर-चातुर्मास की सहिष्णुता ने ही मुझे ऐसा सजीव प्रशिक्षण दिया। उसके कारण मैं सहिष्णुता के प्रभाव को आंक सका और अपने जीवन में उसका अनेक बार प्रयोग कर सका।

अहिंसा का सुरक्षा कवच

अहिंसा का सुरक्षा कवच है सहिष्णुता। उसके बिना अहिंसा का विकास संभव नहीं है। पूज्य कालूगणी का जीवन सहिष्णुता का मूर्त रूप रहा है। जीवन की सान्ध्य बेला में उनके बाएं हाथ की तर्जनी अंगुली में एक जहरीला फोड़ा हो गया। उसकी पीड़ा असह्य थी, उन्होंने शल्य-चिकित्सा के लिए डॉक्टर द्वारा लाए गए औजार का प्रयोग नहीं किया। वे भेद-विज्ञान की साधना में लीन रहे। उस समय उनकी जो सहिष्णुता और समता रही, वह अलौकिक थी। ❑

उद्देश्यपूर्ण जीवन का पड़ाव

वह व्यक्ति समझदार कहलाता है, जो समय की नब्ज देखकर चलता है। मैं समझदारी का दावा तो नहीं करता, पर मैंने समय की आहट को सुनने की काफी सावधानी बरती। उन दिनों देश की युवा पीढ़ी धर्म के रूढ़ और क्रियाकांडी रूप से संतुष्ट नहीं थी। धर्म के क्षेत्र में रूढ़ता की घुसपैठ होने के कारण पूरे धर्म को ही नकारना उचित नहीं था। फिर भी युवा मानस में उभरी हुई सुगबुगाहट को उपेक्षित करना संभव नहीं था। मैंने उस संबंध में थोड़ा-सा चिंतन किया। उलझनवाली कोई बात नहीं थी, क्योंकि मेरे सामने आचार्य भिक्षु द्वारा व्याख्यायित धर्म का प्रकाश था। उन्होंने अपने समय में धर्म पर आई रूढ़ता की परतों को दूर कर उसे लोकजीवन के साथ जोड़ने का एक अद्भुत काम किया था। उन्होंने स्पष्ट रूप में उद्घोषणा की-'त्याग धर्म है, भोग धर्म नहीं है।' इसी उद्घोषणा के आधार पर धर्म को सार्वजनीन बताते हुए उन्होंने कहा—'कोई व्यक्ति जैन है या नहीं, वह स्वयं को किसी धर्म का अनुयायी मानता है या नहीं, पर उसका जो त्याग है, संयम है, व्रत है, वह धर्म है।' इस अवधारणा का भयंकर विरोध हुआ, पर वे ऐसे फक्कड़ संत थे, जो विरोधों को चीरकर आगे बढ़ गए।

धर्मक्रांति का फलित : अणुव्रत

आचार्य भिक्षु से जो प्रकाश-किरण मुझे मिली थी, उसके आलोक में देखने पर लगा कि लोग धर्म के साथ सौदा कर रहे हैं। वे दिन भर ऑफिस और दुकान में बैठकर गलत काम करते हैं, पर सांझ होते ही मंदिर या धर्मस्थान में जाकर अनुभव करते हैं कि उनका पाप साफ हो गया। रिश्वत लेते समय तथा अनैतिक तरीकों से व्यापार करते समय वे प्राप्त होनेवाले लाभ में भगवान या धर्म का हिस्सा रखते हैं। ऐसे लोग भी इस संसार में हैं, जो झूठ बोलते हैं, चोरी करते हैं, शराब पीते हैं, रुपए-पैसे के प्रलोभन से वोट लेते हैं, सामाजिक कुरूढ़ियों को शान के साथ निभाते हैं और अपने आपको धार्मिक मानते हैं, क्योंकि वे मंदिर में जाते हैं, पूजापाठ करते हैं और अछूत के हाथ का पानी नहीं पीते। तरस आता है उन लोगों की बुद्धि पर। क्या ऐसी धार्मिकता से उनका कल्याण हो सकता है? इस सब स्थितियों को देखकर मन में आया कि आज धर्म में भी क्रांति की जरूरत है।

धर्म में क्रांति की अपेक्षा तब हुई जब वह इस लोक की चिंता छोड़कर केवल परलोक सुधारने की बात करने लगा। धर्म में क्रांति की बात तब आई जब वह समस्या का समाधान देने के स्थान पर स्वयं समस्या बन गया था। धर्म-क्रांति की प्रासंगिकता तब प्रमाणित हुई जब धर्म प्रयोग की बात भूलकर रूढ़ उपासना में कैद हो गया था। ऐसे धर्म के प्रति बौद्धिक लोगों के मन में कोई आकर्षण नहीं रहा। उस धर्म के प्रति भी प्रबुद्ध व्यक्ति की आस्था केंद्रित नहीं हो सकती, जो संप्रदायों को लोहावरण बनाकर पारस्परिक सद्भावना को विखंडित कर देता हो। जब धर्म की तेजस्विता इन-इन कारणों से धूमिल होने लगी, तब मैंने अपनी दृष्टि से धर्मक्रांति की बात की। अणुव्रत एक प्रकार से धर्मक्रांति का ही फलित है। आज यह संप्रदाय-विहीन धर्म के रूप में प्रतिष्ठा प्राप्त कर चुका है।

मैं एक संप्रदाय की आस्था से बंधा हुआ हूं, पर संप्रदाय को ही सब कुछ नहीं मानता। संप्रदाय छिलका है, सुरक्षा-कवच है। उसका उतना ही महत्त्व है, जितना फल की सुरक्षा के लिए छिलके का होता है। धर्म सदा संप्रदाय से ऊपर रहता है। इसी दृष्टि से मैं अणुव्रत को संप्रदायविहीन धर्म कहता हूं। अणुव्रत सही अर्थ में ऐसा है या नहीं, यह बात उसकी आचार-संहिता का अध्ययन करने से स्पष्ट हो जाती है।

अणुव्रत आचार-संहिता का स्वरूप

- मैं किसी भी निरपराध प्राणी की हत्या नहीं करूंगा।
- मैं किसी पर आक्रमण नहीं करूंगा। आक्रामक नीति का समर्थन नहीं करूंगा। विश्व-शांति तथा निःशस्त्रीकरण के लिए प्रयत्न करूंगा।
- मैं हिंसात्मक उपद्रवों एवं तोड़फोड़मूलक प्रवृत्तियों में भाग नहीं लूंगा।
- मैं मानवीय एकता में विश्वास करूंगा-जाति रंग आदि के आधार पर किसी को ऊंच-नीच नहीं मानूंगा, अस्पृश्य नहीं मानूंगा।
- मैं धार्मिक सहिष्णुता रखूंगा।
- मैं व्यवसाय और व्यवहार में प्रामाणिक रहूंगा।
- मैं ब्रह्मचर्य तथा इंद्रिय-संयम का क्रमिक विकास करूंगा।
- मैं चुनाव के संबंध में अनैतिक आचरण नहीं करूंगा।
- मैं सामाजिक कुरूढ़ियों को प्रश्रय नहीं दूंगा।
- मैं मादक तथा नशीले पदार्थों-शराब, गांजा, चरस, हेरोइन आदि का सेवन नहीं करूंगा।
- मैं व्यसन-मुक्त जीवन जीऊंगा।

अणुव्रती बनने का अधिकारी वह व्यक्ति है, जिसकी नैतिक एवं प्रामाणिक जीवन में आस्था है। इसमें वर्ण, जाति, भाषा, प्रांत, लिंग, रंग आदि का कोई भेदभाव नहीं है। मेरे अभिमत से धर्मोपासना का अधिकार भी उसी को मिलना चाहिए, जो नैतिक जीवन जीता है। जीवन में अनैतिकता रहे, बेईमानी रहे और धार्मिकता भी रहे-यह विसंगति जब तक दूर नहीं होगी, धर्म का वर्चस्व निखर नहीं सकेगा।

धर्म संप्रदाय नहीं, जीवन की पवित्रता है। धर्म उपासना नहीं, आचरण है। धर्म अगले जन्म के लिए ही नहीं, वर्तमान जीवन के लिए है। इन तथ्यों की सचाई परखने के लिए अणुव्रत, प्रेक्षाध्यान और जीवन-विज्ञान- इस त्रिसूत्री कार्यक्रम को समझना बहुत जरूरी है। अणुव्रत की भांति प्रेक्षाध्यान और जीवन-विज्ञान भी असांप्रदायिक कार्यक्रम हैं। जैन-अजैन सभी लोग इनसे लाभांवित हो रहे हैं। ❑

मौन संकल्पपूर्वक करें

''परिश्रम की अधिकता के कारण सिर में भार, आंखों में गर्मी आज भी काफी बढ़ गई। रात्रि के समय से भी आराम नहीं मिला तब सवेरे डेढ़ घण्टे का मौन किया और नाक से लम्बे श्वास लिए। इससे बहुत आराम मिला। पुनः शक्ति संचय सा होने लगा। चित्त प्रसन्न हुआ। मेरा विश्वास है कि मौन साधना मेरी आत्मा के लिए, मेरे स्वास्थ्य के लिए बहुत अच्छी खुराक है। बहुत बार मुझे ऐसे अनुभव भी होते रहते हैं। यह मौन साधना मुझे नहीं मिलती तो स्वास्थ्य संबंधी बड़ी कठिनाई होती, पर वैसा क्यों हो? स्वाभाविक मौन चाहे पांच घंटे का हो उसमें उतना आराम नहीं मिलता, जितना संकल्पपूर्वक किए गए एक घण्टे के मौन से मिलता है। इससे यह भी स्पष्ट है कि संकल्प में कितना बल है। साधारणतया मनुष्य यह नहीं समझ सकता, पर तत्त्वतः संकल्प में बहुत बड़ी आत्म शक्ति निहित है। उससे आत्मशक्ति का भारी विकास होता है। अवश्य ही मनुष्य को इस संकल्प बल का प्रयोग करना चाहिए।''

सफर आधी शताब्दी का

आचार्यकाल के पांच दशकों में मैंने अनुभव किया—

- व्यक्ति की अपेक्षा संगठन के माध्यम से अधिक कार्य किया जा सकता है।
- वही संगठन अधिक कार्य कर सकता है, जो अनुशासित, ज्ञान और चरित्र से संपन्न होता है। मुझे इस बात का गौरव है कि 'तेरापंथ' जैसे अनुशासित, ज्ञान और चरित्र से संपन्न संघ में मैं दीक्षित हुआ और वह मेरे कार्य का माध्यम बना।
- व्यापक क्षेत्र में कार्य करने के लिए दृष्टिकोण को उदार बनाना जरूरी है। संकीर्ण दृष्टिवाला कोई बड़ा कार्य नहीं कर सकता।
- प्रगति के लिए प्राचीन परंपराओं को बदलना जरूरी है, किंतु बदलने में विवेक उससे अधिक जरूरी है! आध्यात्मिक विकास के साथ परंपरा का परिवर्तन विशुद्ध नीति में आस्था पैदा करता है। आस्था के सहारे समाज परिवर्तन को सह लेता है।
- प्रगति और परिवर्तन के साथ संघर्ष भी आता है। उसे झेलने के लिए मानसिक संतुलन आवश्यक है। असंतुलित व्यक्ति संघर्ष में विजयी नहीं हो सकता। मैंने अपने शासनकाल में अनेक संघर्ष झेले हैं। गुरुदेव के आशीर्वाद से अपना संतुलन बनाए रखा। आनेवाले संघर्ष विकास के चरण बन गए।
- संगठन की दृष्टि से संस्था का मूल्य निश्चित है, पर उससे भी अधिक मूल्य है गुणात्मकता का। मैंने प्रारंभ से ही व्यक्ति-निर्माण पर ध्यान दिया। उसमें मुझे कुछ सफलता मिली। इसका मुझे संतोष है।

  मैंने इन पचास वर्षों में 232 साधुओं और 544 साध्वियों को दीक्षित किया। उनमें से अनेक साधु-साध्वियों ने विशिष्ट क्षमता का अर्जन किया है। कुछ असफल भी हुए हैं। उनकी असफलता में कहीं-न-कहीं जाने-अनजाने मेरी भी असफलता रही है, इसे मैं स्वीकार करता हूं।
- केवल विद्या के क्षेत्र में आगे बढ़नेवाला संघ चरित्र की शक्ति के बिना चिरजीवी नहीं हो सकता तो केवल चरित्र को मूल्य देनेवाला जनता के लिए उपयोगी नहीं बन सकता। इसलिए हमारा संघ चरित्र और ज्ञान दोनों क्षेत्रों में गतिशील रहा है। मैंने युग की भाषा को समझने और युगचेतना को जगाने के लिए कुछ नए कार्यक्रम जोड़े। वे हमारे विकास में सहयोगी बने हैं।
- सुविधावादी दृष्टिकोण मनुष्य को कर्तव्यविमुख, सिद्धांतविमुख और दायित्वबोध से विमुख बनाता है। इसलिए हमारे साधु-साध्वियां जितने श्रमपरायण और स्वावलंबी रहेंगे, उतना ही संघ-विकास होगा।
- आज तेरापंथ धर्मसंघ के परिपार्श्व में अनेक संस्थाएं विकसित हुई हैं। उनके प्रति हमारी जितनी निःस्पृहता रहेगी, उतना ही साधु-संघ के लिए अच्छा रहेगा।
- आध्यात्मिक विकास के लिए महत्त्वाकांक्षी होना बहुत अच्छी बात है, किंतु पद और उपाधि के लिए जिन साधु-साध्वियों ने महत्त्वाकांक्षा की, उन्हें गिरते देखा, इसलिए साधु-साध्वियां इससे बचते रहेंगे।
- जहां संघ है, संगठन है, वहां व्यवहार का निर्वाह भी जरूरी है। साधु-साध्वियां परस्पर और श्रावकों के साथ मृदु और कुशलतापूर्ण व्यवहार करते हैं, तब संगठन को बल मिलता है अन्यथा समस्याएं पैदा होती हैं।
- सेवा संगठन की शक्ति का मूल आधार है। मैंने हमारी सेवा की परंपरा को जागरूकता के साथ निभाने का प्रयत्न किया है और मेरी यह दृढ़ मान्यता है कि संघीय शक्ति को विकसित करने का यह एक अपूर्व माध्यम है। हमारी यह विशेषता भविष्य में भी बनी रहेगी, ऐसा मेरा विश्वास है।

- चतुर्विध धर्म-संघ की भावनाओं को पूरा करना, संतुष्टि देना आचार्य का कर्तव्य है। मैंने इस कर्तव्य-पालन में जागरूकता बरती है, फिर भी मैं नहीं कह सकता कि सबकी भावनाओं को पूरा कर सका हूं और संतुष्टि दे सका हूं, पर जब कभी मुझे संघ के किसी सदस्य से असंतोष का पता चला, उसको संभालने में मैंने तत्परता अवश्य बरती है।

यह मेरे अनुभवों और कर्तव्य-विधियों का संक्षिप्त-सा निष्कर्ष है। मैंने तेरापंथ-शासन की गरिमा को बढ़ाने का प्रयत्न किया है और भविष्य में करता रहूंगा, ऐसा संकल्प है।

मैंने तेरापंथ-शासन के व्यापक सिद्धांतों का पूरी मानवजाति के हित में प्रयोग किया है, उससे शासन की सुषमा बढ़ी है और जनता को पथ-दर्शन भी मिला है।

मैं चाहता हूं कि हमारा भविष्य अहिंसा, संयम, तपस्या, समन्वय और मानसिक संतुलन के विकास का भविष्य बने।

वर्तमान में हिंसा और अपराध बढ़े हैं। पदार्थवादी या भोगवादी मनोवृत्ति और सुविधावादी दृष्टिकोण ने हिंसा को उत्तेजना दी है। आज के मनोरंजन और संचार के साधनों ने जनता का ध्यान यांत्रिक विकास तथा सुख-सुविधा के साधनों की ओर आकर्षित किया है। यह आकर्षण आपात में अच्छा लगता है, परिणाम में अच्छा नहीं हैं। मेरी भावना है कि इस वातावरण में मैं आध्यात्मिक मूल्यों को कुछ प्रतिष्ठा दे सकूं, जनता में उनके प्रति आकर्षण पैदा कर सकूं।

मैं सह-अस्तित्व और समन्वय में विश्वास करता हूं। इसलिए मैंने सभी समाजों और सम्प्रदायों के साथ समन्वय साधने का प्रयत्न किया है तथा छुआछूत जैसी अमानवीय धारणाओं को निर्मूल बनाने का प्रयत्न भी किया है। भविष्य में भी इस दिशा में हमारा प्रयत्न चलता रहे, यह मेरी आशंसा है। मैं इस मंगल अवसर पर सबके लिए मंगल-कामना करता हूं और चाहता हूं कि हम सब मिलकर धर्म और धर्म-शासन के कल्पतरु को शतशाखी बनाएं। ❑

आचार्य महाप्रज्ञजी द्वारा प्रदत्त जन्म कुंडली का फलादेश

हर व्यक्ति अपने वैभव के साथ जन्म लेता है। जन्म-कुण्डली उसकी संकेत-लिपि होती है। उसे पढ़कर भविष्य को देखा जा सकता है। आचार्यश्री के जीवन का केन्द्रीय तत्त्व है पराक्रम। सिंह लग्न वाला व्यक्ति पराक्रमी, तेजस्वी, प्रभावशाली और अजेय होता है। उसका व्यक्तित्व महान्, इच्छाशक्ति प्रबल होती है। छठे स्थान का शनि संघर्ष की स्थिति में भी मनोबल को ऊंचा बनाए रखता है। मकर राशि का गुरु जातक को कर्मनिष्ठ बनाता है। नवमांश कुण्डली में गुरु विद्याभाव को पूर्ण दृष्टि से देखता है, उससे शिक्षा के विकास और साहित्यिक प्रतिभा के निखार का योग बनता है। तीसरे घर का सूर्य सम्मान प्राप्ति का और तुला का मंगल आंतरिक स्फूर्ति का संकेत देता है। चन्द्र और बुध की युति इस बात का संकेत है कि जातक को जीवन-भर संघर्ष से गुजरना होगा। नवमांश कुण्डली में चन्द्र अपनी उच्च राशि में है। वह सूचित करता है कि जितना विरोध होगा, उतने ही उच्च स्तरीय लोग सहयोगी बनेंगे। विरोध करने वाले भी आगे चलकर सहयोगी बन जाएंगे। ज्योतिषी अध्ययन के आधार पर गुरुदेव के जीवन का यह रेखाचित्र बनता है :

1. पराक्रमी, 2. कर्मनिष्ठ, 3. उद्यमशील, 4. तेजस्वी, 5. प्रभावशाली, 6. इच्छाशक्ति और संकल्पशक्ति का धनी, 7. संघर्षयुक्त, 8. प्रतिकूल परिस्थिति में भी मनोबली, 9. क्रांतिकारी, 10. नई धाराणाओं का प्रवर्तक, 11. महान् परिव्राजक, 12. शोध-अनुसंधान का प्रेरक, 13. संघीय-व्यवस्था में नव-उन्मेष।

आचार्यश्री की जीवन की घटनाओं में इस रेखांकन की संवादिता खोजी जा सकती है।

आचार्य पद का विसर्जन

आचार्य पद विसर्जन की पृष्ठभूमि

गुरुदेव के मनोबल और विकास की कल्पना में एक सामंजस्यपूर्ण संवादिता चल रही थी। हर व्यक्ति ने इसका अनुभव किया। गुरुदेव स्वयं कभी-कभी इसकी व्याख्या करते थे। डायरी (संख्यांक 15) का एक पृष्ठ इस विषय को बहुत स्पष्ट कर रहा है—*'मेरा मन बहुत प्रसन्न है। मेरी आत्मा स्वस्थ है। शरीर थोड़ा अस्वस्थ है, पर वह मुझ पर हावी नहीं हो सकता। मेरी इच्छाशक्ति, संकल्पशक्ति और पुरुषार्थ प्रबल है। मैं हार नहीं मान सकता। मुझ पर मेरे गुरु का जबरदस्त साया है। मैं स्वयं उच्च चरित्र में विश्वास करता हूं। अनवरत गतिशीलता में विश्वास करता हूं। मैं स्वयं आत्मानुशासित हूं, अनुशासनप्रिय हूं। संघ का शास्ता हूं। मेरे सामने विकास का बहुत बड़ा मैदान खुला है। मैं बढ़ता चलूंगा, दृढ़ता से चलूंगा। संसार की कोई शक्ति मुझे मेरी गतिशीलता से नहीं रोक सकती।'*

उक्त पंक्तियों में अपना निरीक्षण, अपना विश्लेषण और अपना अंकन हुआ है। यह आचार्य पद विसर्जन की पृष्ठभूमि है। यदि गहरा आत्मविश्वास, अतुल मनोबल और अमाप्य साहस न हो तो एक नई परंपरा का सूत्रपात करना सहज, सरल नहीं है।

संघीय व्यवस्था की दृष्टि से निश्चिन्त हुए बिना विकास की कल्पना को आगे नहीं बढ़ाया जा सकता। युवाचार्य की नियुक्ति के बाद गुरुदेव संघीय व्यवस्था की दृष्टि से निश्चिन्त हो गए थे। निश्चिन्तता की अभिव्यक्ति समय-समय पर होती रही। डायरी में भी यत्र-तत्र निश्चिंतता का उल्लेख मिलता है। आत्मविश्लेषण के अनन्तर गुरुदेव ने लिखा—*'मेरे हाथ बहुत मजबूत हैं। मेरा भुजबल सशक्त है। महाप्रज्ञ-से अन्तर्दृष्टि संपन्न मेरे युवाचार्य हैं। विनीत हैं, जागरूक हैं, स्वस्थ हैं। महाश्रमणी, संघमहानिदेशिका साध्वीप्रमुखा कनकप्रभा मेरी तनुछाया है। विनीता है, सक्रिया है और स्वस्था है। महाश्रमण मुदितकुमार मेरा सहज सेवाभावी शिष्य है। मैं भविष्य के लिए निश्चिन्त हूं।'*

- मैंने सोचा—तेरापंथ का कोई आचार्य इतने लम्बे समय (अट्ठावन वर्ष) तक शासन-सत्ता पर नहीं रहा। मैं सबसे अधिक रहा हूं। अब मुझे इससे निवृत्त होकर प्रायोगिक जीवन का अभ्यास करना चाहिए।
- मैंने सोचा—जयाचार्य (तेरापंथ के चतुर्थ आचार्य) ने शासन सत्ता से निवृत्त रहने का प्रयोग किया था। उसमें और वर्तमान व्यवस्था में इतना अंतर है कि जयाचार्य ने अपने युवाचार्य मघवा को एक प्रकार से आचार्य ही बना दिया। संघ की सारणा-वारणा, आलोयणा देने का कार्य वे ही करते। उससे कुछ नया करने की बात मेरे मन में आई।' 'अकडं करिस्सामि'—जो नहीं किया, वह करूं, यह मनोवृत्ति है। इस मनोवृत्ति ने मुझे प्रेरित किया- मैं अपने युवाचार्य को आचार्य के रूप में प्रतिष्ठित करूं। तेरापंथ के भाग्यविधाता आचार्य भिक्षु और भिक्षु शासन की परंपरा के अनुसार आचार्य अपने उत्तराधिकारी के रूप में युवाचार्य की नियुक्ति करते हैं और मैंने भी की है। पूर्ववर्ती किसी भी आचार्य ने अपने युवाचार्य को आचार्य के रूप में नहीं देखा। मैं इसे देखना चाहता हूं- इस चाह को मैंने आकार दे दिया।
- मैंने सोचा—अस्सी वर्ष की अवस्था हो गई है, स्वास्थ्य भी अनुकूल नहीं हैं। विश्राम की अपेक्षा

है। शासनसत्ता और अधिकारों के बने रहने पर श्रम की अनिवार्यता होती है। श्रम करना है तो क्यों नहीं इस पद को युवाचार्य में प्रतिष्ठित कर दिया जाए।

- मैंने सोचा–एक शिष्य आचार्य के पद पर प्रतिष्ठित होकर अपने गुरु के प्रति कितना विनम्र हो सकता है, उसका निदर्शन अकृतज्ञ मनोवृत्ति वाले युग के समक्ष प्रस्तुत करना चाहिए।' 'अणंतनाणोवगमोविसंतो'–इस आगमवाणी की सत्यता को प्रमाणित करना चाहिए।
- मैंने सोचा–मेरे इस कार्य से युग को यह मार्गदर्शन मिल सकता है–एक समय सीमा के बाद पद, सत्ता, अधिकार आदि को किसी दूसरे में प्रतिष्ठित कर स्वयं को हलका जीवन जीना चाहिए।
- मैंने सोचा–एक कल्पना ने जन्म लिया–मैंने धर्म को निर्विशेषण बना दिया। अणुव्रत धर्म है, किन्तु जैन, बौद्ध, वैदिक आदि किसी विशेषण से जुड़ा हुआ नहीं है। निर्विशेषण धर्म का प्रवर्तक स्वयं निर्विशेषण क्यों नहीं बने? 'तुलसी' यह नाम जनता के मन में रम गया। अब इसे किसी विशेषण की पीठ पर बिठाने की जरूरत नहीं है।
- मैंने सोचा–पद के बिना भी काम किया जा सकता है– इस धारणा का उज्जीवन होना चाहिए, जिससे पद के पीछे दौड़ने की मनोवृत्ति में अन्तर आए।
- मैंने सोचा–सत्ता और अधिकार पर रहा व्यक्ति मुक्त बात नहीं कह सकता। सत्ता से ऊपर उठा हुआ व्यक्ति निस्संकोच अपनी बात जनता के सामने प्रस्तुत कर सकता है।
- मैंने सोचा–आज जैन संप्रदायों में आचार्यों की बाढ़ आ रही है। कहीं शिष्य कम और आचार्य अधिक न हो जाएं, इस समस्या का समाधान है– पद की अपेक्षा साधना का आकर्षण अधिक बढ़े।

अपूर्व उत्सव : आचार्य पद का विसर्जन

18 फरवरी 1994। मर्यादा-महोत्सव का दिन। सुजानगढ़ के विशाल स्टेडियम का प्रांगण। हजारों-हजारों लोगों की उपस्थिति। चातुर्मासों की नियुक्ति के बाद मैंने छोटा-सा आह्वान किया–जो भाई-बहन चातुर्मासों की घोषणा सुनते ही उठ जाएंगे, वे एक सुन्दर निधि खो देंगे और एक महत्त्वपूर्ण अवसर को देखने से वंचित हो जाएंगे।...इतना सुनते ही हजारों आंखों में जिज्ञासा के भाव उतर आए। निर्धारित समय पर मैंने कहा-'आज तक किसी आचार्य ने अपनी आंखों से युवाचार्य को आचार्य रूप में नहीं देखा। मैं देखना चाहता हूं।' इतना कह कर मैंने तत्काल निर्देश की भाषा में कहा–'महाप्रज्ञ खड़े हो जाओ।' तहत्ति शब्द का उच्चारण करते हुए महाप्रज्ञजी मेरे सामने बद्धांजलि खड़े थे। मैंने पुनः कहा-'तेरापंथ का इतिहास साक्षी है कि अस्सी वर्ष की अवस्था तक किसी ने भी आचार्य पद का दायित्व नहीं संभाला, किन्तु मैंने संभाला है। मेरे सामने सक्षम युवाचार्य हैं। मैं इतना भोला तो नहीं हूं कि इनकी क्षमता का उपयोग न कर, सदा स्वयं कार्य करता रहूं। यह कार्य इतना अप्रत्याशित था कि किसी के कानों में भनक तक नहीं थी। केवल संघ महानिदेशिका महाश्रमणी से परामर्श किया था, किन्तु ये भी समझ नहीं सकीं, क्योंकि कल्पना नहीं थी।

उसी समय महाप्रज्ञ को क्या सूझा, कैसे सूझा, मैं नहीं जानता। तत्काल इन्होंने निवेदन किया–**'गुरुदेव! मैंने सब कुछ आपसे पाया है। मेरे पास जो कुछ है, वह सब आपका दिया हुआ है। मेरी विनम्र प्रार्थना है कि हम इस अवसर पर आपको 'गणाधिपति पूज्य गुरुदेव' विशेषण से विभूषित करना चाहते हैं।' मैंने कहा–'महाप्रज्ञजी, रहने दो। मुझे विशेषण नहीं चाहिए। केवल तीन अक्षर का 'तुलसी' नाम ही पर्याप्त है** लेकिन ये भी धुन के पक्के हैं। सब साधु-साध्वियों, श्रावक-श्राविकाओं के साथ इन्होंने भावनात्मक घेरा डाल दिया। मैंने कहा-'देखो, मैं वही हूं और वहीं हूं। तुम दबाव मत डालो। आप लोग जानते ही हैं कि बहुमत की बात स्वीकार करनी पड़ती है। मैंने भी संघ की भावना को स्वीकृति दे दी। मेरी मनोकामना है कि मैं मानवता की सेवा करूं, जन-जन का पथदर्शन करूं। मैं यथाशक्य यह कार्य करता रहा हूं, अब पूरी शक्ति के साथ करूंगा।'

इस अभूतपूर्व घटना की जो प्रतिक्रिया हुई, वह भी अद्‌भुत है। मैं उस दिन से निश्चिन्त बन गया। मैंने साधु-साध्वियों की सभा आमंत्रित कर कहा—'अब तुम लोगों का दायित्व है कि जैसा मुझे समझते हो, वैसा ही इनको समझो। अपनी श्रद्धा-भक्ति उंड़ेल दो। अब सारा कार्य ये करेंगे। इन्हें कार्य सिखाना नहीं पड़ेगा। ब्रह्मा को कौन सिखाता है? इनकी अन्तर्दृष्टि जागृत है। बन्धुओ! ऐसे शिष्य का मिलना भी सौभाग्य की बात है।

अभिनन्दन मानवता के भविष्य का

10 तारीख को महावीर विद्यालय में 'अभिनन्दन मानवता के भविष्य का'—इस विषय पर एक विशाल परिषद् आयोजित हुई। उसमें मुख्यमंत्री भैरोसिंह शेखावत, कुंभाराम आर्य जैसे राजनीति के शीर्ष पुरुष विद्यमान थे। ओमपूर्ण स्वतंत्र जैसे सामाजिक कार्यकर्ता, प्रभाष जोशी और राजेन्द्र अवस्थी जैसे समर्थ पत्रकार उपस्थित थे।

इस कार्यक्रम को सब लोग आश्चर्य भरी आंखों से देख रहे थे। गुरुदेव की प्रतिमा जनमानस में इतनी प्रतिष्ठित हो गई थी कि उसे भिन्न रूप में देखना अजीब-सा लग रहा था। उस अभिनन्दन समारोह में पूज्य गुरुदेव ने एक मार्मिक वक्तव्य देते हुए कहा—'मैंने मर्यादा-महोत्सव पर अचानक बिना किसी को सूचना दिए, बिना परामर्श किए साठ वर्ष के संघीय दायित्व को युवाचार्य महाप्रज्ञ को सौंप दिया, उनमें संक्रान्त कर दिया। आज तक तेरापंथ के पूर्व आचार्यों ने किसी को आचार्य के रूप में नहीं देखा, मैं देखना चाहता हूं। मैंने महाप्रज्ञ को खड़ा किया, दायित्व दिया और कहा-'अब तुम आचार्य हो, मैं सिर्फ तुलसी हूं।' मैंने यह कार्य बहुत सोच-समझकर किया है। अब मैं अपने आपको बहुत हलका महसूस कर रहा हूं। मैंने दो कार्यों के लिए स्वयं को समर्पित किया है—**अध्यात्म साधना करूंगा और मानवता की सेवा करूंगा।** ❑

जैन श्वेताम्बर तेरापंथी महासभा की 99वीं वार्षिक साधारण सभा की सूचना

मान्यवर,

सादर जय जिनेन्द्र,

जैन श्वेताम्बर तेरापंथी महासभा की 99वीं वार्षिक साधारण सभा आगामी माघ शुक्ला षष्ठी 2069, शनिवार दिनांक 16 फरवरी, 2013 को सायं 6.30 बजे आचार्यश्री महाश्रमण प्रवास स्थल, टापरा (राजस्थान) में होगी, जिसमें निम्नलिखित विषयों पर विचार-विमर्श होगा—

- ❑ महासभा की 98वीं वार्षिक साधारण सभा की कार्यवाही का पठन एवं स्वीकृति।
- ❑ महासभा की 99वीं वार्षिक साधारण सभा के अवसर पर महामंत्री के प्रतिवेदन पर विचार व स्वीकृति।
- ❑ महासभा के हिसाब परीक्षक द्वारा अंकेक्षित 1 अप्रैल, 2011 से 31 मार्च, 2012 तक के आय-व्यय लेखे की स्वीकृति।
- ❑ महासभा के आगामी एक वर्ष के लिए अंकेक्षक की नियुक्ति।
- ❑ आए हुए प्रस्तावों एवं सुझावों पर विचार।
- ❑ विविध : अध्यक्ष महोदय की अनुमति से।

सभी सदस्यों की उपस्थिति सादर प्रार्थित है।

भवदीय

बिनोद कुमार चोरड़िया

महामंत्री

02 जनवरी, 2013

कोलकाता

विचार दीर्घा में आचार्यश्री तुलसी

आचार्य तुलसी के अनुभूत सच की उन्हीं के शब्दों में प्रस्तुति

समय ठहरता नहीं

- जीवन के क्षण हाथ से फिसलते जा रहे हैं, वैसे ही जैसे मुट्ठी से रेत। आदमी मुट्ठी भर रेत लेकर चलता है। दो-चार किलोमीटर के सफर में काफी रेत हाथ से फिसल जाती है। जो थोड़ी-बहुत बचती है, उसे बड़े जतन से सहेजकर रखना पड़ता है। मनुष्य को यदि संपूर्ण आयुष्य मिले तो उसकी जिंदगी के दिन भी कुछ कम नहीं होते, पर प्रतिदिन सूरज उगता है, सरकता है और अस्त हो जाता है। उसके साथ ही मनुष्य के आयुष्य का एक-एक दिन घटता जाता है। दिन, महीना बनते हैं और महीने, वर्ष बन जाते हैं। वर्ष-दर-वर्ष जिंदगी दौड़ती है किसी नई राह की खोज में।

  तब से अब तक की जीवन यात्रा में समय चुपचाप सरक गया। कहीं एक क्षण के लिए भी वह ठहरा नहीं। इस यात्रा में मैंने अनुभव किया कि आदमी का जीवन एक अद्‌भुत कहानी है। इसमें चढ़ाव भी हैं, उतार भी है। कामयाबी भी है, नाकामयाबी भी है। अपनी परंपरा और संस्कृति का व्यामोह भी है और नएपन से जुड़ने की झलक भी है। पुरखों से विरासत में प्राप्त तेरापंथ धर्मसंघ को अपने जीवन से जोड़कर मैंने अशेष आत्मतोष का अनुभव किया है।

- मैं अकिंचन हूं। गरीब मानें तो सबसे बड़ा गरीब हूं और अमीर मानें तो सबसे बड़ा अमीर हूं। गरीब इसलिए हूं, क्योंकि पूंजी के नाम पर मेरे पास एक नया पैसा भी नहीं है और अमीर इसलिए हूं, क्योंकि कोई चाह नहीं। जीवन में सन्तुलन रहना चाहिए। न अहं, न हीनता। न आवेश, न दीनता, न आलस्य और न अतिक्रमण।

क्या यह सच है?

- 'यदि इस देश के लोग इतने गरीब है तो वे श्रम से विमुख क्यों हो रहे हैं? यदि देश की जनता को भरपेट रोटी नहीं मिलती तो करोड़ों रुपए प्रसाधन-सामग्री में क्यों बहाए जाते हैं? देश में सूखे की इतनी समस्या है तो विलासिता का प्रदर्शन किस बुनियाद पर किया जा रहा है? यदि भारतीय लोगों में कर्तव्यनिष्ठा है तो राष्ट्रीय सामाजिक एवं पारिवारिक दायित्वों से आंख मिचौली क्यों हो रही है? यदि उनमें ईमानदारी है तो ऊपर से नीचे तक भ्रष्टाचार क्यों छा रहा है? यदि उन्हें स्वच्छता का आकर्षण है तो, गंदगी क्यों फैल रही है?'

उम्र से पहले बूढ़ा क्यों बनें?

- यह एक प्रकार की दुर्बलता है कि व्यक्ति खेती के लिए श्रम तो नहीं करता, पर अच्छी फसल चाहता है। दही मथने का श्रम नहीं करता पर मक्खन पाना चाहता है। व्यवसाय में पुरुषार्थ का नियोजन नहीं करता, पर धनपति बनना चाहता है। पढ़ने में समय लगाकर मेहनत नहीं करता, पर परीक्षा में अच्छे अंकों से उत्तीर्ण होना चाहता है। ध्यान साधना का अभ्यास नहीं करता, पर योगी बनना चाहता है। मेरे मन में अनेक बार विकल्प उठता है कि सूरज आता है, प्रकाश होता है। सूरज अस्त होते ही फिर अन्धकार छा जाता है। प्रकाश और अन्धकार की यात्रा का यह शाश्वत क्रम है। ये काम करते-करते नहीं थकते तो फिर हम क्यों अघाएं?

रूढ़ उपासना पर क्रूर व्यंग्य

'सत्तर वर्ष तक धर्म किया, माला फेरते-फेरते अंगुलियां घिस गई, पर मन का मैल नहीं उतरा। चढ़ते-चढ़ते मंदिर की सीढ़ियां घिस गईं, पर जीवन नहीं बदला। सन्तों के पास जाते-जाते पांव घिस गए, पर व्यवहार में बदलाव नहीं आया। क्या लाभ हुआ धार्मिकों को ऐसे धर्म से?'

संयम का मूल्यांकन

'संयम का मूल्यांकन होता तो बढ़ती हुई आबादी की समस्या जटिल नहीं होती। अपरिग्रह का मूल्य समझा जाता तो गरीबी की समस्या को पांव पसारने का अवसर नहीं मिलता। पुरुषार्थ को महत्त्व मिलता तो बेरोजगारी की समस्या नहीं बढ़ती। अहिंसा की मूल्यवत्ता होती तो आतंकवाद की जड़ें गहरी नहीं होती। एकता और अखण्डता का मूल्य होता तो धर्म, भाषा, जाति आदि के नाम पर देश का विभाजन नहीं होता। मानवीय एकता या समता का सिद्धान्त प्रतिष्ठित होता तो जातीय भेदभावों को पनपने का अवसर नहीं मिलता। छुआछूत जैसी मनोवृत्तियों को अपने पंख फैलाने के लिए खुला आकाश नहीं मिलता।'

साधनात्मक अनुभव

'हमारा वर्तमान का अनुभव बताता है कि इन्द्रियों और मन की मांग को समाप्त किया जा सकता है। अपने जीवन में पहली बार प्रयोग कर रहा हूं। इस समय इन्द्रियां निश्चिन्त हैं और मन शान्त है। खान-पान, जागरण, देखना, बोलना, किसी भी प्रवृत्ति के लिए मन पर बाध्यता नहीं है।'

विधायक भाव

'कुछ लोग निराशा के खोह में सोए रहते हैं। वे अतीत में जीते हैं। भविष्य में उड़ान भरते हैं। जो नहीं किया, उसके लिए पछताते हैं। नई आकांक्षाओं के सतरंगें इन्द्रधनुष रचते हैं। कभी समय को कोसते हैं। कभी परिस्थिति को दोष देते हैं और कभी अपने भाग्य का रोना रोते हैं। ऐसे लोग निषेधात्मक भावों के खटोले में बैठकर जिन्दगी के दिन पूरे करते हैं।'

कुछ लोग आस्था के स्वरों को गुनगुनाते हैं। नए यात्रा पथ पर प्रस्थान करते हैं। अवरोधों को तोड़ कर रास्ता बनाते हैं, संघर्षों से हंसते-हंसते खेलते हैं। धैर्य के साथ आगे बढ़ते हैं और मंजिल तक पहुंच जाते हैं। ऐसे लोग विधायक भावों के अश्व पर सवारी करने वाले होते हैं।

आदर्श को जी लें

'यदि जीवन में अभीष्ट सफलता चाहते हो तो एक आदर्श को लो, उसका चिंतन-मनन करो, उसी को अपने सपने में पा लो ओर उसी को अपना जीवन बना लो। अपने मस्तिष्क, मांसपेशियों, स्नायुतंत्र एवं समूचे *अंग प्रत्यंगों को उसी आदर्श के विचार से ओत-प्रोत* कर दो और अन्य विचारों को एक तरफ हटा दो, फिर देखो, सफलता कैसे तुम्हारे कदम चूमती है?'

समूह के साथ विचार क्रांति

'मैं समूह से मुक्त होकर किसी भी आदर्श की बात करूं, उसमें विशेषता क्या है? कोई भी व्यक्ति अपने आपको समूह से अलग कर बड़ी-से-बड़ी विचार क्रान्ति की बात कर सकता है, किन्तु वह क्रान्ति आएगी कहां से? समूह में से ही तो हमें उस क्रान्ति को प्रकट करना होगा। अकेला व्यक्ति क्रांति की बात अवश्य कर सकता है, पर क्रांति नहीं कर सकता। इसलिए धर्म की क्रान्ति के लिए, धर्म को तेजस्वी बनाने के लिए हमें समूह को साथ लेकर चलना होगा। जिस विचार-क्रान्ति को समूह का समर्थन मिलेगा वही सफल हो सकेगा, इसलिए समूह से अलग छिटककर किसी भी ठोस परिणाम की मुझे आशा नहीं।'

मेरा सपना

'मेरा बहुत वर्षों से एक स्वप्न था कि जिस प्रकार नाटक, सिनेमा को देखने, स्वादिष्ट खाद्य पदार्थों को खाने में लोगों का आकर्षण है, वैसा ही या उससे भी बढ़कर आकर्षण धर्म व अध्यात्म के प्रति जाग्रत हो। लोगों को धर्म व अध्यात्म की बात सुनने का निमंत्रण नहीं देना पड़े, बल्कि आन्तरिक जिज्ञासावश और आत्मविश्वास की प्राप्ति के लिए वे स्वयं उसे सुनना चाहें तथा धर्म और अध्यात्म को जीना पसन्द करें।'

प्रबल आत्मबल

'मैं मानता हूं, मेरे पास न रेडियो, न अखबार और न आज के प्रचार योग्य वैज्ञानिक साधन हैं और न मैं इन सबका उपयोग ही करता हूं, लेकिन मेरी वाणी में आत्मबल है, आत्मा की तीव्र शक्ति है और मुझे अपने संदेश के प्रति आत्म-विश्वास है। फिर कोई कारण नहीं कि मेरी यह आवाज जनता के कानों से नहीं टकराए। यदि हमारा आत्मबल प्रबल है तो कोई कुछ भी नहीं बिगाड़ सकता। अतः चिंता करने की कोई आवश्यकता नहीं है।'

संघर्ष ही जीवन है

'कठिनाइयां न आएं, वह कार्य ही क्या? कठिनाइयों से तो हमें प्रेरणा मिलती है, मेरा सबसे लम्बा कार्यकाल रहा, अगर कठिनाइयों से घबरा जाता तो इतना काम कभी नहीं होता। हो सकता है काम करते-करते कोई भूल भी हो जाए, ध्यान में आने के बाद उसमें संशोधन हो जाना चाहिए, यह स्वस्थ परंपरा है, पर कठिनाइयों से घबरा कर कार्य से विमुख होना कायरता है। निषेधात्मक भावों से आक्रांत एवं प्रमादी व्यक्ति कभी सफलता की दिशा में चरणन्यास नहीं कर सकता। बड़ी-से-बड़ी समस्या के समय यदि हिम्मत और आत्मबल से काम लिया जाए तो समाधान का पथ मिल सकता है। अविश्रांत भाव से चलने वाला साधक ही मंजिल की दूरी को कम करता हुआ अपने गंतव्य को प्राप्त कर सकता है।'

संघर्ष सिखाता है

'मेरे संयमी जीवन का सर्वाधिक सहयोगी और प्रेरक साथी कोई रहा है तो वह है संघर्ष। मेरा विश्वास है कि मेरे जीवन में इतने संघर्ष न आते तो शायद मैं इतना मजबूत नहीं बन पाता। संघर्ष से मैंने बहुत कुछ सीखा है, पाया है। संघर्ष मेरे लिए अभिशाप नहीं, वरदान साबित हुए है।

मैं कहूंगा कि मैं राम नहीं, कृष्ण नहीं, बुद्ध नहीं, महावीर नहीं, मिट्टी के दीए की भांति छोटा दीया हूं। मैं जलूंगा और अन्धकार को मिटाने का प्रयास करूंगा।'

आत्मालोचन

'लोग जब मुझे संकीर्ण साम्प्रदायिक नजरिए से देखते हैं तो मेरी अन्तर आत्मा अत्यन्त व्यथित होती है। उस समय मैं आत्मालोचन में खो जाता हूं—अवश्य मेरी साधना में कहीं कोई कमी है, तभी तो मैं लोगों के दिलों में विश्वास पैदा नहीं कर सका।'

मेरी अहिंसा

'मैं केवल आत्मनिष्ठा और अहिंसा की साधना की दृष्टि से काम कर रहा हूं। न कोई आकांक्षा और न कोई स्पर्धा। मेरे कार्य का कोई मूल्यांकन करता है या नहीं, इसकी भी कोई चिन्ता नहीं। मैंने विरोधों में कभी हीनभावना का अनुभव नहीं किया और प्रशस्तियों में कभी अहंकार को पुष्ट नहीं किया। दोनों स्थितियों में सम रहने की साधना ही मेरी अहिंसा है।'

क्रोध-विजय कितना दुरूह

'कल क्षमा का दिन था। मैंने भी जागरूकता रखी, पर सूक्ष्मता से ध्यान दिया तो एक दिन में पंद्रह बार उत्तेजना आई। उसको दूसरा तो जान ही नहीं सकता, खुद भी ध्यान देने से ही समझें। इससे मालूम पड़ता है कि क्रोध-विजय कितना दुरूह है।'

अनुशासन में तनाव कहां?

'एक धर्मसंघ का दायित्व संभालते समय मेरे सामने विभिन्न प्रकार की परिस्थितियां आती हैं। परिस्थिति की विकटता एक बार मुझे विचलित कर सकती है, पर मैं तत्काल संभल जाता हूं। इसी कारण मैं हर समय मानसिक दृष्टि से स्वस्थ और संतुलित रहता हूं। इस संदर्भ में मैं अपने अनुभवों का उपयोग करते हुए यह कह सकता हूं कि तनाव उनको होता है जिनका स्वयं पर अनुशासन नहीं है। तनाव उन्हें सताता है जिनका अपनी वृत्तियों पर कंट्रोल नहीं है। तनाव की समस्या उनके सामने है जो स्वतंत्र नहीं, यंत्र है। उनके यांत्रिक जीवन की पहचान है दूसरों के मूल्यांकन पर अपना अंकन। किसी के कहने मात्र से अपने कार्य को अच्छा या बुरा मानने वाले व्यक्ति कभी तटस्थ चिन्तन नहीं कर सकते और न ही संतुलित रह सकते हैं।'

समय का अपव्यय क्यों?

'मैं जो कर्म करता हूं वह मेरी मुक्ति का साधन है अतः उसमें मुझे श्रम का अनुभव नहीं होता। लोग कहते हैं कि आपको बहुत श्रम करना पड़ता है। मैं परिश्रम करता हूं किंतु मुझे थकान नहीं आती, क्योंकि जो श्रम मन से किया जाता है उसमें थकान की अपेक्षा शांति अधिक मिलती है। जहां बलात् परिश्रम करना पड़ता है, उसमें हानि की संभावना रहती है।

निष्क्रिय बनकर बैठे रहना विश्राम नहीं, समय का अपव्यय है। ऐसा विश्राम मेरी प्रकृति के प्रतिकूल है। मुझे कार्य के सामने भूख और प्यास नहीं सताती। 24 घंटों में केवल आहार और शयन का समय मेरा है। यदि कोई इस समय का उपयोग करना चाहे तो मैं इसे भी दे सकता हूं। जीवन के कीमती क्षणों को आलस्य में खोना बहुत बड़ी निधि को हाथ से खोना है। जो लोग ऐसी जिन्दगी जीते हैं उन्हें देखकर कई बार मन में आता है, क्या ही अच्छा हो कि इनका समय मुझे मिल जाए, क्योंकि मेरे पास इतने काम हैं कि दिन-रात व्यस्त रहने के बावजूद भी वे आगे से आगे तैयार रहते हैं।'

सुविधा नहीं, श्रम पसन्द है

'बहत्तरवें वर्ष में प्रवेश करने के बावजूद मुझे भरोसा है कि आज भी मेरी कार्यजा शक्ति में कोई कमी नहीं आई है। मैं 18 घंटे बिना बिना थके काम कर सकता हूं। रात को तीन घंटे नींद लेकर भी उठता हूं तो कभी नींद पूर्ति की इच्छा नहीं रहती।

मैं आज भी अपने आपको पूरी तरह से तरोताजा अनुभव कर रहा हूं। मुझमें उत्साह, स्फूर्ति और लगन व विकास की महत्त्वाकांक्षा अभी भी 17 वर्ष जैसी है।

मेरे गुरुदेव ने दो बातें सिखलाई—पहली यह कि अकर्मण्य जीवन नहीं जीना और दूसरी विलासिता एवं सुविधाओं भरा जीवन नहीं जीना। इसी का परिणाम है कि आज भी मैं बिना श्रम किए नहीं रह सकता। मैं सुविधा नहीं, श्रम पसंद करता हूं।'

प्रयोगधर्मा बनें

'मेरे मन में बार-बार आता है कि साधु-जीवन का स्वीकार ही सब कुछ नहीं है। आध्यात्मिक विकास के लिए नए-नए प्रयोग होने चाहिए। हमारा संघ अनुशासित है, व्यवस्थित है, मर्यादित है, किन्तु अब तक भी अध्यात्म की प्रयोगशाला नहीं बन पाया है। मैं प्रायोगिक जीवन में विश्वास करता हूं। इतने बड़े समूह में सब व्यक्ति प्रयोगधर्मा हों, यह संभव नहीं है, फिर भी एक वातावरण बने। जिनकी प्रयोग करने में रुचि एवं क्षमता हो, उनको रास्ता मिलना चाहिए।'

आत्मा का काम करें

'हमारे साधु-साध्वियां सोचें कि वे कितना काम शरीर का करते हैं और कितना काम आत्मा का? सुंदरता के लिए कपड़ा पहनते हैं तो शरीर का काम करते हैं, स्वाद के लिए खाते हैं तो शरीर का काम करते हैं और शरीर को बढ़िया बनाने का काम करते हैं तो शरीर की गुलामी करते हैं। अगर स्वाध्याय, ध्यान, जप, सेवा, तप और विनय करते हैं तो समझिए आत्मा का काम करते हैं।'

जागरूक बनें

'यदि हम जागरूक हैं तो एक कदम भी देखे बिना नहीं चलेंगे, प्रमार्जन किए बिना नहीं बैठेंगे, विचारे बिना नहीं बोलेंगे, समय का दुरुपयोग नहीं करेंगे, दूसरों से जैसी अपेक्षा रखेंगे, वैसा स्वयं बनने का प्रयास करेंगे। हमारा संघ प्रगतिशील संघ है, पर हमें एक बात का सदैव ध्यान रखना है कि हम युग के प्रवाह में न बह जाएं। हमें अपनी अध्यात्म भावना को सदा जाग्रत रखना है और साधना में उत्कर्ष लाने हेतु नए-नए प्रयोग करते रहना है।'

सन्तता का प्रमाण

'व्यक्ति स्वयं अपनी प्राप्ति की तुला पर तुल सकता है। उसकी वृत्तियों में क्रोध, मान, माया, लोभ आदि का उभार है या नहीं? वह किसी की प्रतिकूल हरकत को सहन कर सकता है या नहीं? वह अपनी दुर्बलताओं को स्वीकार कर सकता है या नहीं? यदि उसे दुर्बलताओं का एहसास हो जाता है तो वह उनसे मुक्त होने का प्रयास करता है या नहीं? इन सब बिन्दुओं, कसौटियों पर जो खरा उतरता है, वह अपनी सन्तता को उजागर कर सकता है। अन्यथा संत बनने के लिए कोई सर्टिफिकेट तो मिलता नहीं है जिसे दिखाकर संतपना प्रमाणित किया जा सके।' ❑

संबोधन अलंकरण समारोह

श्रद्धेय आचार्यप्रवर द्वारा संबोधन प्राप्त श्रावक-श्राविकाओं को महासभा द्वारा पूज्यप्रवर के पावन सान्निध्य में टापरा में दिनांक 14 फरवरी, 2013 को आयोजित संबोधन अलंकरण समारोह में अलंकरण प्रदान कर सम्मानित किया जाएगा। 13 फरवरी, 2013 को सायं 6 बजे संबोधन प्राप्तकर्ताओं के सम्मान में **'मिलन गोष्ठी'** का आयोजन होगा। सभी संबोधन प्राप्तकर्ताओं को महासभा द्वारा आमंत्रण पत्र प्रेषित किया जा चुका है। सभी संबोधन प्राप्त श्रावक-श्राविका एवं परिवारजन उक्त आयोजन में सादर आमंत्रित हैं। बैज एवं अतिथि कार्ड आदि भी प्रेषित किए जा रहे हैं। जिन महानुभावों को अभी तक पत्र प्राप्त नहीं हुआ है, वे कृपया महासभा कार्यालय से संपर्क करें।

सभी संबोधन प्राप्त श्रावक-श्राविकाओं अथवा परिवारजन से निवेदन है कि टापरा में अलंकरण प्राप्त करने वाले एक व्यक्ति का नाम यथाशीघ्र महासभा कार्यालय में प्रेषित करने की कृपा करें। आयोजन की सुव्यवस्था की दृष्टि से आपके द्वारा अधिकृत व्यक्ति ही अलंकरण प्राप्त कर सकेंगे।

आप अपना नाम महासभा के फोन नंबरों 033 2235 7956, 2234 3598 पर अथवा टापरा में महासभा के शिविर कार्यालय में भी अपना नाम लिखवा सकते हैं। अधिक जानकारी हेतु मोबाइल नंबर 09331014472 पर संपर्क कर सकते हैं। टापरा में आवास व्यवस्था हेतु निम्न पते एवं फोन नं. पर संपर्क करावें।

आचार्यश्री महाश्रमण मर्यादा महोत्सव आयोजन समिति
तेरापंथ भवन, मेन रोड
पोस्ट : टापरा-344022, जिला : बाड़मेर (राज.)

संपर्क सूत्र

श्री शांतिलाल संकलेचा, संयोजक – 9413507407, 9571333400

श्री रावतमल बी. गोठी, महामंत्री – 9448124560, 9571345900

बिनोद कुमार चोरड़िया
महामंत्री

हीरालाल मालू
अध्यक्ष

जैन श्वेताम्बर तेरापंथी महासभा

(ISO 9001 : 2008 9001 : 2008 प्रमाणित)

3, पोर्चुगीज चर्च स्ट्रीट, कोलकाता 700001

दूरभाष : (033) 22357956, 22343598, फैक्स : (033) 22343666

अपूर्व रात : विलक्षण बात

17 फरवरी, 1987 को सातड़ा गांव में डॉ. श्यामसुखा और डॉ. विनायकिया ने दर्शन किए। स्वास्थ्य को लेकर चर्चा चली। डॉक्टरों ने काफी विभीषिका दिखाई। उन्होंने महाप्रज्ञजी और मधुकरजी को सावधान करते हुए मेरी जीवन-पद्धति में बदलाव लाने की बात पर बल दिया। उन्होंने कुछ बातें नोट करके दी–

- विहार औसतन पांच किलोमीटर से अधिक नहीं।
- विहार में गति धीमी हो।
- भोजन के बाद मध्याह्न का विहार न हो।
- विहार में बालू रेत से बचा जाए।
- विहार के समय साथ चलनेवाले लोग कुछ दूरी पर चलें, ताकि रजकण न उड़ें।
- नाक में प्लास्टिक फिल्टर का प्रयोग करें, ताकि श्वास के साथ रजकण भीतर न जाएं।
- जहां तक हो सके, तनाव और दबाव से बचाव किया जाए।
- जहां तक हो सके, सीढ़ियां न चढ़े।
- भोजन के बाद कम-से-कम एक घंटा पूर्ण विश्राम करें।
- प्रशासन का काम पूरी तरह से महाप्रज्ञजी को संभलवा दिया जाए।
- जो औषधि अभी चल रही है, उसमें किसी अनुभवी स्नातकोत्तर स्तर के डॉक्टर से परामर्श किए बिना कोई परिवर्तन न करें।

डॉक्टरों की बात मैंने भी सुन ली। मेरे मन पर कोई प्रतिक्रिया नहीं हुई। मैं निश्चिंत और निर्भार होकर लेट गया। लेटने के काफी समय बाद तक नींद नहीं आई। मैं करवटें बदलता रहा। ऐसा कई बार हो जाता है, इसलिए दिमाग में कोई नया विकल्प पैदा नहीं हुआ।

लगभग साढ़े नौ बजे का समय था। मैं पूर्ण जागृत अवस्था में था। अचानक ऐसा एहसास हुआ कि कोई मुझे उठाकर बैठने की प्रेरणा दे रहा है। आंखें खोलकर इधर-उधर देखा। कुछ भी दिखाई नहीं दिया। सब संत लेटे हुए थे। मुनि बालचंद पट्ट के पास बैठा था। शायद मुझे भ्रम हो गया, यह सोच मैंने पुनः आंखें बंद कर लीं। फिर वैसा ही एहसास हुआ। मैं उठकर बैठ गया और नमस्कार महामंत्र का जप करने लगा। जप करते-करते मैं उसी में लीन हो गया। मुझे अतिरिक्त आनंद का अनुभव हुआ।

एक ओर मुझे आश्चर्य हो रहा था, दूसरी ओर मैं बार-बार कुछ पद्यों का स्मरण कर रहा था—

'सुत्ता अमुणी सया मुणिणे सया जागरंति'

× × ×

या निशा सर्वभूतानां तस्यां जागर्ति संयमी।
यस्यां जाग्रति भूतानि सा निशा पश्यतो मुनेः।।

× × ×

इन पद्यों का स्मरण करते समय मुझे नींद न आने की बिल्कुल चिंता नहीं थी। चिंतन था तो इतना ही कि यह सब हो क्या रहा है? मैं फिर जप में लीन हो गया।

इस बीच मुनि बालचंद बोला–'ग्यारह बज रहे हैं।' मैंने जप छोड़कर ध्यान करना शुरू कर दिया। ध्यान शुरू करते ही एक बार मैंने सोचा–'आज नींद का न आने का क्या कारण हो सकता है? शरीर पर ध्यान केंद्रित किया तो सब कुछ सामान्य था। न श्वास लेने में किसी प्रकार का अवरोध, न सिर में भारीपन, न शरीर में दर्द और न कोई अन्य कारण। फिर भी आंखों में नींद नहीं थी। मैं श्वास प्रेक्षा करने लगा। ध्यान में मन अच्छी तरह रम गया। एक घंटे का समय कब पूरा हो गया, पता नहीं चला। आंखें खोलीं तो कमरे में मौन व्याप्त था। बड़ा अच्छा लगा। उस मौन को तोड़ते हुए मुनि बालजी ने

कहा—'क्या बात है? स्वास्थ्य कैसा है? मुनि मधुकरजी को जगा दूं?' मैंने कहा-'चिंता की कोई बात नहीं है। स्वास्थ्य ठीक है। मुझे अभी ध्यान करना है।' ध्यान में एक क्षण का व्यवधान भी अच्छा नहीं लगा। इस बार मैं पद्मासन लगाकर ध्यान में बैठ गया।

ध्यान जमा तो ऐसा जमा मानो मन के सारे विकल्प समाप्त हो गए। निर्विकल्प समाधि की अवस्था। मैं अभिभूत हो गया। कुछ समझ में नहीं आ रहा था कि क्या हो रहा है? पर कुछ-न-कुछ ऐसा घटित हो रहा था, जिसकी अभिव्यक्ति मौन से अधिक कुछ नहीं हो सकती। सातड़ा गांव की उस रात्रि में मैंने जिस अपूर्व और अनिर्वचनीय आनंद का अनुभव किया, उसकी स्मृति मात्र से रोमांच हो जाता है।

लगभग एक घंटा पद्मासन में बैठने के बाद मैंने आंखें खोलकर चारों ओर देखा। मुझे ऐसा प्रतीत हुआ कि कोई अदृश्य शक्ति मेरा सहयोग कर रही है। मैंने मन-ही-मन कहा—'कौन है? क्या है? कुछ प्रत्यक्ष दिखाई क्यों नहीं दे रहा है? मुझे लगता है कि कोई सहारा दे रहा है, पर वह दिखाई क्यों नहीं देता है? यह समाधि की स्थिति है अथवा कुछ और है? मेरे द्वारा क्या होनेवाला है? कम-से-कम कोई ऐसा चिह्न ही प्रकट हो जाए जो मुझे प्रत्यक्ष आभास दे सके। मन-ही-मन बहुत पुकारा, पर कोई सामने नहीं आया। शब्दों की कुछ ऐसी आकृतियां उभरकर आईं कि गहराई में जाओ, आज संसार में जो मानवीय समस्याएं हैं, उनका समाधान करो।'

क्या मेरे द्वारा कोई समाधान होगा? इस प्रश्नचिह्न को विराम मिला, अपने ही भीतर से उठकर वहीं विलीन होने वाले नाद से—'हां, समाधान होगा, समाधान होगा।' वे शब्द कहां से आए और कहां गए, कुछ ज्ञात नहीं। बस इतना-सा याद है कि मैं उस समय बिलकुल हलका हो गया था और ऐसा लग रहा था मानो मैं पट्ट से ऊपर उठ रहा हूं। मन में इच्छा जगी—'सारी रात ऐसे ही बिता दूं, पर पता नहीं क्यों, मैंने ध्यान समाप्त कर दिया और महाप्रज्ञजी को बुला लाने का निर्देश दिया।'

तब तक मुनि मधुकर भी जाग चुका था। वह महाप्रज्ञजी को बुलाने गया। असमय में नींद से जगाने पर वे घबरा गए। उनका पहला प्रश्न था-'आर्चायश्री का स्वास्थ्य कैसा है?' स्वास्थ्य ठीक है, यह सुन वे आश्वस्त हो गए। उनके आने पर मैंने पूरा घटनाक्रम उनको सुना दिया। पूरी बात सुन वे बोले-'आप में अर्जित शक्तियां बहुत हैं। उनका उद्घाटन कभी-कभी ऐसे ही होता है। आप जिस निर्विकल्पता की स्थिति में हैं, वही आनंद की अवस्था है। तब तो काफी समय हो चुका है। थोड़ी देर आप लेट जाइए।'

मैंने कहा—'लेटने की इच्छा नहीं हो रही है। मैं फिर ध्यान में बैठूंगा। तुम भी साथ-साथ ध्यान करो।' वहां जो अन्य साधु थे, उन्हें भी निर्देश दे दिया कि ध्यान करना हो तो बैठ जाओ, अन्यथा दूसरे कमरे में जाकर लेट जाओ। इस निर्देश पर मुनि मधुकर, मुनि बालचंद, मुनि हीरालाल, मुनि मुदितकुमार आदि ध्यान में बैठने के लिए तैयार हो गए। मैं पट्ट से नीचे उतरा और बैठ गया। सोचा-'मुंह किधर किया जाए?' जिस ओर पहले मुंह था, उसी दिशा में यानी उत्तराभिमुख होकर मैंने इस बार सामूहिक ध्यान किया। डेढ़ से सवा दो-ढाई बजे तक यह क्रम चला। आनंद की शृंखला अब तक टूटी नहीं थी, फिर भी मैंने ध्यान पूरा किया। महाप्रज्ञजी को लेटने का निर्देश देकर भेज दिया। उनके आग्रह पर मैं भी थोड़ी देर लेट गया। लेटने के बाद भी नींद नहीं आई। प्रातः चार बजे उठा तो नींद न आने का बिलकुल भी भार नहीं था।

18 फरवरी को प्रातः 'सातड़ा' से चले और आठ किलोमीटर चलकर वीनासर पहुंचे। विगत तीन दिनों में चलने से जितनी थकान का अनुभव हुआ, उस दिन नहीं हुआ। मन पूरी तरह प्रसन्न रहा। शरीर में भी हलकापन रहा। यह सब क्या था? क्यों था? नहीं बता सकता। पूज्य गुरुदेव कालूगणी की स्मृति के कई चमत्कार अनुभव में हैं। उस दिन बिना स्मृति के अनायास ही जो चमत्कार हुआ, वह विलक्षण है। —'सातड़ा' की वह अपूर्व रात फिर कब आएगी, इस प्रतीक्षा में श्रीमद् रायचंद्र की एक पंक्ति कानों में गूंजने लगी है—**'अपूर्व अवसर एवो क्या रे आवशे'** ❑

जैन धर्म पहचान के कुछ घटक

धर्म एक ऐसा तत्त्व है, जो जीवन देता है। वह व्यक्ति को अंधकार से प्रकाश की ओर ले जाता है। असत् से सत् की ओर ले जाता है। मृत्यु से अमरता की ओर ले जाता है। वह ऊर्जा का अखंड स्रोत है। उसे बांटा नहीं जा सकता। वह निर्विशेषण सत्य है। उसके साथ किसी विशेषण का औचित्य है, तो वह है मानवधर्म। फिर भी उसके साथ कुछ विशेषण जुड़े हुए हैं, जैसे-जैनधर्म, बौद्ध धर्म, वैदिक धर्म आदि। यह एक प्रकार का व्यवहार है। इससे विचारों की परंपरा आगे बढ़ती है। व्यवहार के धरातल पर जीनेवाला व्यक्ति व्यवहार सत्य की उपेक्षा नहीं कर सकता। इसी दृष्टि से संसार में अनेक धर्मों का अस्तित्व है।

आदर्श/मंजिल

जैनधर्म महान् धर्म है। वह जन-जन का धर्म है, इसलिए जैनधर्म है। जैनधर्म के आदर्श हैं जिनेन्द्र। आदर्श का अर्थ है लक्ष्य या मंजिल। व्यक्ति जहां पहुंचना चाहता है, जो पाना चाहता है, वही उसकी मंजिल होती है। एक जैन व्यक्ति का सर्वोच्च ध्येय होता है—आत्मा से परमात्मा बनना, ईश्वर या परमेश्वर बनना। जैन परिभाषा में इसे अर्हत, वीतराग या आप्तपुरुष कहा जाता है। प्रत्येक व्यक्ति का यह अधिकार है कि वह अर्हत बन सकता है। बनना और न बनना उसके पुरुषार्थ पर निर्भर है। जो व्यक्ति जितना पुरुषार्थ करता है, उतना आगे पहुंच सकता है।

उपासना

जैनधर्म किसी व्यक्ति का उपासक नहीं है। न तो इसका आदर्श कोई व्यक्ति है और न इसके महामंत्र में किसी व्यक्ति विशेष का उल्लेख है। यह शुद्ध आत्मा की उपासना में विश्वास रखता है। दूसरे शब्दों में कहा जाए तो सम्यक् ज्ञान, सम्यक् दर्शन और सम्यक् चारित्र की उपासना में इसका विश्वास है। उपासना का संबंध पूजा-पाठ से नहीं है। आत्मशुद्धि के लिए क्रियाकांडों की कोई अपेक्षा नहीं है। ज्ञान, दर्शन और चारित्र की आराधना के अतिरिक्त किसी प्रकार की आराधना इसे मान्य नहीं है। व्यक्ति स्वयं सम्यक्ज्ञानी, सम्यक्दर्शनी और सम्यक्चारित्री बने, यही इसकी उपासना है।

सिद्धांत

जैनधर्म का सिद्धांत है स्याद्वाद। इसे सापेक्षवाद या समन्वयवाद भी कहा जाता है। किसी मत विशेष का आग्रह इसे मान्य नहीं है। इसके लिए वे सभी विचार सत्य हैं, जो सापेक्ष हैं। वे सभी विचार व्यर्थ हैं, जो निरपेक्ष हैं। यह एक वस्तु में अनंत विरोधी धर्मों की सत्ता स्वीकार करता है। इसके अभिमत से कोई एक वस्तु एकांततः शाश्वत या अशाश्वत, सामान्य या विशेष नहीं हो सकती। ये सभी धर्म अपेक्षाभेद से वस्तु के साथ जुड़ते हैं।

सृष्टि का स्वरूप

जैनधर्म के अनुसार यह सृष्टि ईश्वर या किसी अदृश्य शक्ति की रचना नहीं है। एक अपेक्षा से यह शाश्वत है। शाश्वत का अर्थ है—यह थी, है और रहेगी। दूसरी अपेक्षा से सृष्टि परिवर्तनशील है। इसमें परिवर्तन हुआ है, हो रहा है और होता रहेगा। स्वरूप की दृष्टि से इसका प्रारंभ या विनाश करनेवाला कोई नहीं है। इसलिए किसी ईश्वर या परमेश्वर पर इसकी जिम्मेवारी नहीं है।

कर्तृत्व

जैनधर्म की एक महत्त्वपूर्ण मान्यता यह है कि सुख और दुःख का कर्ता व्यक्ति स्वयं है। 'करै सो भरै', 'कर्ता सो भोक्ता' आदि कहावतें इसी तथ्य को पुष्ट करती हैं। सुख-दुःख में निमित्त कोई भी बन सकता है, पर उसका मूल कारण 'उपादान' व्यक्ति के भीतर होता है। व्यक्ति किसी के लिए सुख और दुःख की परिस्थितियां पैदा कर सकता है, पर वह किसी को सुखी और दुःखी बना नहीं सकता, क्योंकि व्यक्ति सुखी या दुःखी बनता है अपने संवेदन से। इसलिए अपने सुख-दुःख का जिम्मेवार वह स्वयं है।

उत्पाद और विनाश का आधार

जैनधर्म के अनुसार इस संसार में नया कुछ भी नहीं है। जो कुछ है, वह सदा से है। जीव भी सदा से है और अजीव भी सदा से है। न तो कोई नई पैदावार होती है और न कोई समूल विनाश होता है। जीव और अजीव-दोनों के साथ उत्पाद एवं विनाश जुड़े हुए हैं। उत्पाद और विनाश से रहित किसी स्थिर वस्तु की कल्पना 'आकाश-कुसुम' से अधिक कुछ नहीं है। इसी प्रकार ध्रुव तत्त्व के बिना उत्पाद एवं विनाश भी निराधार हो जाते हैं। इस दृष्टि से संसार में जितने अस्तित्ववान पदार्थ हैं, उन सबमें उत्पाद, विनाश एवं ध्रौव्य का योग रहता है। परमाणु से लेकर आत्मा और आकाश तक कोई भी पदार्थ इस त्रिपदी की परिधि से बाहर नहीं रह सकता।

मानवीय दृष्टि

जैनधर्म में जाति के आधार पर किसी को छोटा या बड़ा नहीं माना जाता। इसके अनुसार जाति कोई मूल्यवान तत्त्व नहीं है। यदि जाति को मूल्य देना ही हो, तो एक मनुष्य जाति हो सकती है। ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य, शूद्र आदि जातियां कल्पित हैं। इनका आधार है व्यवसाय। व्यवसाय के आधार पर बननेवाली जातियां बनती-मिटती रहती हैं। इसलिए इन्हें जाति के स्थान पर वर्ग कहना अधिक उपयुक्त है। जब जातिवाद अतात्त्विक है, तो उसके आधार पर उच्चता-हीनता, स्पृश्यता-अस्पृश्यता एवं सम्मान-अपमान की कल्पना मूढ़ता है।

जीवन-मृत्यु

जैनधर्म में जीने का अतिरिक्त महत्त्व नहीं है और मृत्यु निरर्थक नहीं है। जीना एक कला है तो मरना भी कला है। कोई व्यक्ति आवेशवश मृत्यु का वरण करता है, वह यहां मान्य नहीं है। प्रतिक्रियाशून्य क्रिया, फिर चाहे वह जीना हो या मरना, एक आदर्श क्रिया है। व्यक्ति की हर क्रिया में कला की पुट हो, यह जरूरी है। कला का संबंध संयम और समाधि के साथ है।

धर्म का उद्देश्य

जैनधर्म एक वैज्ञानिक धर्म है। अंधविश्वासों और रूढ़ियों में इसकी कोई अभिरुचि नहीं है। यह एक व्यापक दृष्टिकोण है। इसे किसी वर्ग या कौम विशेष में बांधकर नहीं रखा जा सकता। किसी प्रलोभन या भय के कारण धर्म की आराधना प्रशस्त दृष्टिकोण नहीं है। धर्म का काम है व्यक्ति को विशुद्धि या विकास के मार्ग पर अग्रसर कर मंजिल तक पहुंचा देना, आत्मा को परमात्मा बना देना।

जैनधर्म के मौलिक सिद्धांत, जिनका संक्षिप्त विवेचन ऊपर किया गया है और अधिक संक्षेप में बताया जाए तो उनकी पूरी भावना संस्कृत के एक श्लोक में समा जाती है। वह श्लोक इस प्रकार है—

आदर्शोऽत्र जिनेन्द्र आप्तपुरुष- रत्नत्रयाराधना,
स्याद्वाद-समय-समन्वयमय-सृष्टिर्मता शाश्वती,
कर्तृत्वं सुखदुःखयो-स्वनिहितं ध्रौव्यं व्ययोत्पत्तिमत्,
एका मानवजातिरित्युपगमोऽसौ जैनधर्मो महान्।।

जैन जीवनशैली

जैन जीवनशैली के संकलित सूत्रों में न तो सांप्रदायिकता की गंध है और न अतिवादी कल्पना का समावेश है। जीवन-निर्माण में सहायक मानवीय और सांस्कृतिक मूल्यों को आत्मसात् करनेवाली यह जीवनशैली केवल समाज के लिए ही नहीं है, मानव मात्र को मानवता का मंगल पथदर्शन देनेवाली है। यह जीवनशैली जन-जीवन की सर्वमान्य शैली बन जाए, ऐसी मेरी आकांक्षा है।

जन्म और जीवन दो भिन्न घटनाएं हैं। जन्म सहज घटना है। जीवन सरजा जाता है। जन्म का अर्थ है एक खान से पाषाणखंड का बाहर आना। जीवन है उस पाषाणखंड को तराश कर प्रतिमा का निर्माण करना। कारीगर दक्ष होता है तो प्रतिमा को जीवंत-सी बना देता है। दक्षता के अभाव में किसी भी पाषाण को दर्शनीय नहीं बनाया जा सकता। जीवन को सजाने और संवारने की जो दक्षता मनुष्य में है, वैसी अन्य किसी भी प्राणी में नहीं है। मनुष्य दक्षता का उपयोग करे, इसके लिए एक व्यवस्थित जीवनशैली की अपेक्षा है, क्योंकि जीवन की यात्रा अज्ञात में प्रस्थान है। उसके लिए कोई मार्ग निश्चित नहीं है। कुछ व्यक्ति स्वयं मार्ग का निर्माण करते हैं, चलते हैं और मंजिल तक पहुंच जाते हैं। यह साहस अधिक लोगों में नहीं होता। सामान्यतः लोग बने-बनाए पथ की प्रतीक्षा करते हैं। महाजनो येन गतः स पन्थाः महान् व्यक्ति जिस पथ पर चलते हैं, वह पथ सबको सुलभ हो जाता है, पर बहुत लोगों में महान् व्यक्तियों का अनुगमन करने का सामर्थ्य भी नहीं होता। वे इतना सीधा मार्ग खोजते रहे हैं, जिस पर चलने में किसी प्रकार की कठिनाई न हो।

कुछ मार्ग ऐसे होते हैं जिन पर लाखों-करोड़ों लोग चलते हैं पर इतने मात्र से उनकी श्रेष्ठता प्रमाणित नहीं हो सकती। कोई भी वस्तु अधिक बिकाऊ होने मात्र से सर्वोत्तम नहीं हो सकती। कोई भी परंपरा बहुप्रचलित होने मात्र से उपादेय नहीं हो सकती। इसी प्रकार कोई भी जीवनशैली प्राचीन होने मात्र से स्वीकार करने योग्य नहीं हो सकती। जीने का सही तरीका प्रशस्त और उपयोगी माना जाता है, जिससे व्यक्ति और समाज दोनों लाभान्वित हों। जीवन की वही शैली उदात्त और आदरणीय हो सकती है, जो त्रैकालिक और जीवंत जीवन-मूल्यों से अनुप्राणित हो। जो चिरंतन होने पर भी चिरनवीन हो, जो युगीन-समस्याओं के प्रति सचेत हो और जिसमें सांस्कृतिक तथा सामाजिक विकृतियों के निर्मलीकरण का दर्शन निहित हो।

जैनधर्म का अपना मौलिक दर्शन है। इसके सिद्धांत किसी राह चलते व्यक्ति द्वारा निरूपित नहीं है। समता और अनासक्ति की बुनियाद पर इन सिद्धांतों की संरचना की गई है। जैन तीर्थंकर सत्य के परम उपासक थे। उन्होंने अपना जीवन सत्य की खोज या उसके साक्षात्कार हेतु समर्पित किया। उनकी साधना का एकमात्र उद्देश्य था सत्य। उन्होंने साधना की, सत्य का साक्षात्कार किया और अहिंसक जीवनशैली का सूत्रपात किया। संपूर्ण अहिंसा का पालन हर एक व्यक्ति के वश की बात नहीं थी। इस तथ्य को ध्यान में रखकर उन्होंने अहिंसाप्रधान जीवनशैली की व्याख्या की।

वैज्ञानिक विकास के इस युग में, जबकि मनुष्य वैज्ञानिक उपलब्धियों के साथ इक्कीसवीं सदी में प्रवेश की तैयारियां कर रहा है, अध्यात्म का दर्शन

छोड़कर आगे बढ़ेगा तो उसका आगे बढ़ना सार्थक और सौष्ठवपूर्ण नहीं हो सकेगा। एक नए जीवनदर्शन या नई जीवनशैली के साथ मनुष्य अगली सदी में प्रवेश करे, यह इस समय की सबसे बड़ी अपेक्षा है। बहुत वर्षों से यह बात मेरे मन में थी। योगक्षेम वर्ष की समायोजना ने इस बात पर गहराई से ध्यान देने के लिए प्रेरित किया। विशेष उद्देश्य के साथ महावीर वाणी का मनन किया तो अनुभव हुआ कि वहां एक संपूर्ण जीवनशैली के सूत्र बिखरे पड़े हैं। युगीन समस्याओं के संदर्भ में समाधायक सूत्रों को पकड़ा और एक नव-आयामी जैन जीवनशैली उभरकर सामने आ गई। आधुनिक परिस्थितियों से उपजी हुई समस्याओं का समाधान इस प्रकार के शाश्वत और जीवंत मूल्यों के आलोक में ही खोजा जा सकता है।

जैन जीवनशैली के संकलित सूत्रों में न तो सांप्रदायिकता की गंध है और न अतिवादी कल्पना का समावेश है। जीवन-निर्माण में सहायक मानवीय और सांस्कृतिक मूल्यों को आत्मसात् करनेवाली यह जीवनशैली केवल समाज के लिए ही नहीं है, मानव मात्र को मानवता का मंगल पथदर्शन देनेवाली है।. यह जीवनशैली जन-जीवन की सर्वमान्य शैली बन जाएं, ऐसी मेरी आकांक्षा है। दीपक बोलता नहीं, जलता है और प्रकाश फैलाता है। यह जीवनशैली भी बोलने की नहीं, जीने की शैली है। यह न कोई आंदोलन है, न नियमों का समवाय है, न नारा है और न कोई घोषणापत्र है। यह है एक मार्ग, जिस पर चलना है और मनुष्यता के शिखर पर आरोहण करना है।

जैन जीवनशैली के निदेशक तत्त्व

मैं जैन हूं। जैनधर्म में मेरी आस्था है। जैन संस्कृति के प्रति मेरा आकर्षण है। अपनी आस्था की पुष्टि के लिए मैं जिनेन्द्र देव अर्हत को अपना आराध्य देव मानता है। आजीवन पांच महाव्रतों का पालन करनेवाले शुद्ध साधुओं को मैं अपना गुरु मानता हूं। अर्हत-भाषित तत्त्व को मैं धर्मबुद्धि से स्वीकार करता हूं। देव, गुरु और धर्म के प्रति श्रद्धारूप सम्यक्त्व को सुस्थिर बनाने के लिए मैं जैन जीवनशैली के निम्नलिखित निदेशक तत्त्वों (संकल्पों) को स्वीकार करता हूं।

1. समानता

मैं अर्हत वचनों में आस्था रखता हूं। उनके द्वारा निरूपित समता के सिद्धांत में मेरा विश्वास है। इसलिए मैं जाति, वर्ग, रंग, लिंग आदि के आधार पर किसी मनुष्य को हीन नहीं मानूंगा। किसी को अस्पृश्य (अछूत) मानकर उसके प्रति घृणा का व्यवहार नहीं करूंगा।

2. शांत वृत्ति

मुझे शांति प्रिय है। मैं कलह के प्रसंग को टालने का प्रयास करूंगा, मैत्री भावना का विकास करूंगा और पारिवारिक, सामाजिक तथा संस्थागत जीवन में सहिष्णुता और शांत-सहवास का अभ्यास करूंगा। किसी भी परिस्थिति में अपनी एवं दूसरों की शांति भंग करने जैसी स्थिति से बचता रहूंगा।

3. श्रमशीलता

श्रम श्रमण संस्कृति का प्रतीक है। श्रम में मेरा विश्वास है। मैं सापेक्ष स्वावलंबन का अभ्यास करूंगा। श्रम का अवमूल्यन नहीं करूंगा। श्रम करनेवाले को हीनता की दृष्टि से नहीं देखूंगा। किसी के श्रम का शोषण नहीं करूंगा।

4. अहिंसा

अहिंसा और अभय का सहज योग है। अहिंसाप्रधान जीवन जीने के लिए मैं अभय रहूंगा। आत्महत्या, परहत्या और भ्रूणहत्या जैसे अवांछनीय काम नहीं करूंगा। दहेज हत्या से बचता रहूंगा। आतंकवाद को प्रश्रय नहीं दूंगा, पर्यावरण-शुद्धि के लिए जागरूक रहूंगा। अनर्थहिंसा से बचता रहूंगा और क्रूरहिंसा पूर्ण प्रसाधन तथा परिभोग सामग्री शेम्पू, सेंट, आफ्टरशेव लोशन, फर के कोट, बैग, चप्पल आदि वस्तुओं का उपयोग नहीं करूंगा।

5. इच्छा-परिमाण

मैं अपनी इच्छाओं पर नियंत्रण रखूंगा। पदार्थ के परिभोग की सीमा करूंगा। खाद्य पदार्थों में मिलावट नहीं करूंगा। तस्करी (स्मगलिंग) नहीं करूंगा। अंडे, मांस आदि का व्यापार कर अर्थार्जन नहीं करूंगा। अर्जन के साथ स्वामित्व विसर्जन का प्रयोग करूंगा-अपनी आय का ऐच्छिक विसर्जन करूंगा।

6. आहारशुद्धि और व्यसनमुक्ति

मैं खानपान की शुद्धि रखूंगा-मांस, मछली, अंडे आदि का सेवन नहीं करूंगा। व्यसनमुक्त जीवन जीने का अभ्यास करूंगा। शराब, नशीले पदार्थ, पान-पराग आदि मादक पदार्थों से बचता रहूंगा। जुआ नहीं खेलूंगा। शादी के उपलक्ष्य में रास्ते में होनेवाले नाच, रुपयों की उछाल आदि का वर्जन करूंगा। शादी में अभक्ष्य (मांस आदि) तथा अपेय (शराब आदि) का प्रयोग नहीं करूंगा। शादी के उपलक्ष्य में आयोजित ढुकाव, प्रीतिभोज आदि में यथासंभव रात नहीं होने दूंगा। उक्त संकल्पों के अतिक्रमण के प्रसंग में असहयोग करूंगा।

7. अनेकांत

मैं दुराग्रह नहीं करूंगा। विवादास्पद विषय में सामंजस्य बिठाने का प्रयास करूंगा। किसी भी घटना प्रसंग को उसके प्रत्येक कोण से समझने की चेष्टा करूंगा। विचार-भेद की स्थिति में मनोमालिन्य को पनपने का अवसर नहीं दूंगा।

8. समता की उपासना

मैं स्वाध्याय, सामायिक आदि का अभ्यास करूंगा। प्रतिदिन प्रातः उठने के पश्चात्, भोजन से पूर्व तथा शयन से पूर्व-तीनों समय पांच-पांच नमस्कार महामंत्र का विधिपूर्वक जप करूंगा। दैनिक उपासना में प्रतिदिन अर्हत-वंदना करने का लक्ष्य रखूंगा। संवत्सरी महापर्व मनाऊंगा। उस दिन उपवास अवश्य रखूंगा।

मैं घर, दुकान आदि की सजावट में जैन संस्कृतिपरक चित्रों के उपयोग का लक्ष्य रखूंगा, जैसे-नमस्कार महामंत्र का चित्र, जैन तीर्थंकरों के चित्र, आचार्यों के चित्र, जैन प्रतीक आदि। मैं शादी, विवाह आदि के अवसरों पर जैन संस्कार विधि को विस्मृत नहीं होने दूंगा।

9. साधर्मिक वात्सल्य

मैं नमस्कार मंत्र का श्रद्धापूर्वक जप करनेवाले को अपना साधर्मिक मानूंगा। उसके साथ भाईचारे का व्यवहार रखूंगा। उसके सुख-दुःख में उपेक्षा नहीं बरतूंगा। देव, गुरु, धर्म के प्रति उसकी आस्था के स्थिरीकरण का प्रयत्न करूंगा। ❑

काव्याञ्जलि

तुम ऐसे एक विसर्जन, जो सर्जन लिए चलते हो।

कब घन अपनी बून्दों से अपनी ही तृष्णा बुझाता है?
कब तरु अपने सुमनों से अपना शृंगार सजाता है,
तुम ऐसे एक समर्पण, जो ग्रहण लिए चलते हो।।

देते हो दान विभा का लेते हो जग की ज्वाला,
तुम सुधा बांट कर शिव सम पीते हो विष का प्याला,
तुम ऐसे एक निरंजन, जो भुवन लिए चलते हो।।

तुम महामुक्ति के पंथी बन्धन की महत्ता कहते,
तुम आत्म रूप अपने में पर देह रूप से रहते,
तुम ऐसे एक विलक्षण, जो द्वैत बने चलते हो

—कन्हैयालाल सेठिया

तलाश आदमी की

मैं आदमी की तलाश में घूम रहा हूं। मेरे सामने दो प्रकार के चिन्तन हैं—पहला चिन्तन कहता है—आदमी की खोज क्यों? आदमियों का सैलाब उमड़ रहा है। देखते-देखते जनसंख्या कितनी बढ़ गयी। भारत की पैंतीस करोड़ की आबादी पचानबे करोड़ को छूने जा रही है। विश्व की आबादी पांच करोड़ की संख्या पीछे छोड़ चुकी है। दूसरा चिन्तन कहता है—आदमियों की संख्या घट रही है। जिस ओर दृष्टि जाती है, सूट-बूटधारी मनुष्यों की भीड़ दिखाई देती है, पर उसमें आदमी कितने हैं, कहना कठिन है। दूसरे शब्दों में यह माना जा सकता है कि आदमी तो हैं, पर आदमीयत कहीं खो गई है। इनसान बढ़ रहे हैं, पर इनसानियत का क्षरण हो गया है या हो रहा है। ऐसी स्थिति में आदमी की तलाश अपनां विशेष महत्त्व रखती है।

आदमी दो प्रकार के हैं—अच्छे और बुरे। संसार में अच्छे लोगों की संख्या अधिक है या बुरे लोगों की? यह एक प्रश्न है। कहने को ऐसा कहा जाता है कि जमाना बहुत बुरा है। आदमी का मन खराब है। वह पापों और अपराधों में आकंठ डूब गया है। उसके आचरण का धरातल खिसक गया है।

उसे उचित-अनुचित का विवेक नहीं है। अविवेकी व्यक्ति चारों ओर बुराइयों से घिर जाता है, यह चिन्तन का एक कोण है। इसका दूसरा कोण विधायक है। उसके अनुसार आज भी अच्छे आदमी अधिक हैं, पर दिखाई देने वाले बुरे आदमी हैं। उदाहरण के रूप में एक जनसभा को प्रस्तुत किया जा सकता है। हजारों लोगों की सभा में खड़ा होकर एक व्यक्ति बकवास करने लगे तो सबका ध्यान उसकी ओर चला जाता है। शांति से बैठे रहने वाले हजारों लोगों को देखकर भी अनदेखा कर दिया जाता है, क्योंकि उनकी ओर ध्यान आकर्षित करने का कोई कारण नहीं है।

अच्छे आदमियों की कोई कमी नहीं है, पर उनमें दो कमियां अवश्य हैं। पहली कमी यह है कि वे संगठित नहीं हैं। संगठन में शक्ति होती है। बिखरे हुए तिनकों की संहति से बनी हुई बुहारी पूरे घर का कूड़ा-करकट साफ कर देती है। अनेक लकड़ियों से बनी हुई भारी को कोई मजबूत आदमी भी नहीं तोड़ सकता। अलग-अलग बिखरी हुई लोहे की कड़ियां कुछ भी नहीं कर सकतीं, पर उनके संयोग से बनी हुई सांकल हाथी और सिंह को भी बांध देती है। यही स्थिति अच्छे लोगों की है। उनका संगठन सुदृढ़ हो जाये तो वे समाज की धरती पर पनपने वाले असामाजिक तत्त्वों को धराशायी कर सकते हैं। काश! आदमी अपनी इस क्षमता को समझ कर उसका सम्यक् उपयोग कर पाता।

अच्छे लोगों की दूसरी कमी है बुराई या बुरे लोगों के प्रति उपेक्षा का भाव। कोई व्यक्ति या समूह बुराई में प्रवृत्त होता है, चुपचाप बैठे रहते हैं, उन्हें क्या कहा जाये? बुराई करना पाप है, इसी प्रकार बुराई को सहन करना भी पाप है। ऐसा पाप आज बहुत लोग कर रहे हैं। वे सोचते होंगे कि बिना प्रयोजन झंझट में क्यों फंसे? ऐसे चिन्तन पर मुझे तरस आता है। क्या आदमी का जीवन इतना व्यक्तिगत है? इकोलॉजी के नियम को समझने वाले जानते हैं कि एक आदमी पर कोई आपदा आती है, उससे पूरी मानव जाति प्रभावित होती है। ऐसी स्थिति में कोई भी चिन्तनशील आदमी उपेक्षा की संस्कृति का शिकार कैसे हो सकता है? अच्छे आदमियों का संगठन और बुराई के प्रतिकार की दिशा में उनकी जागरूकता-ये दो घटनाएं घटित हो जाएं तो विश्व के चित्रपट पर अच्छे आदमी उभर कर ऊपर आ सकते हैं। ❑

अभिमान है आपदाओं का उत्स

आत्मख्यापन मनुष्य की मौलिक मनोवृत्ति है। वह जैसा होता है, उससे विशिष्ट कहलाना चाहता है। कुछ लोगों को चाह के अनुरूप अवसर मिल जाता है। जब परिवार, समाज या संस्थान में व्यक्ति को अधिक महत्त्व मिलता है तो उसे अभिमान आ जाता है। अभिमान और स्वाभिमान—ये दोनों अलग-अलग हैं। स्वाभिमान व्यक्तित्व का गुण होता है। अभिमान व्यक्तित्व का दोष है। स्वाभिमान को खण्डित कर जीनेवाला व्यक्ति किसी भी समय हीन भावना में जा सकता है। स्वाभिमान व्यक्ति की कर्तव्यनिष्ठा और कर्तृत्वशक्ति को जगाता है, किंतु अभिमान के अश्व पर सवारी करनेवाला उत्पथ में चला जाता है। इतना जान लेने के बाद भी अभिमान और स्वाभिमान की भेदरेखा को समझना बहुत मुश्किल है। यह रेखा इतनी सूक्ष्म है कि इसकी ओर हर किसी का ध्यान जा ही नहीं सकता।

अभिमान बुरा है। इससे सामूहिक जीवन में हर समय टकराव की संभावना बनी रहती है। इसे छोड़ना चाहिए। यह बात सही है, पर सवाल यह है कि इसको छोड़ने का रास्ता क्या है?

मेरे अभिमत से अभिमान को दूर करने के दो रास्ते हैं—चिंतन और अचिंतन। चिंतन का रास्ता सरल है। पहले इसी का प्रयोग करके देखा जाए। चिंतन, सच्चिंतन या आत्मचिंतन एक ऐसा दर्पण है, जो व्यक्ति को वास्तविकता की अवगति दे देता है। मैं आज अपने चिंतन के वातायन को खोलकर दिखाना चाहता हूं।

मेरे चित्त पर भी कभी-कभी अभिमान की छाया आ जाती है। मैं चौंककर उसे देखता हूं और सोचता हूं,—मुझे किस बात का अहंकार हो रहा है? ज्ञान का? क्या मेरे पास ऐसा ज्ञान है, जिस पर मैं अभिमान कर सकूं? संसार में अनेक व्यक्ति ऐसे हैं, जो अनेक क्षेत्रों में मेरे से अधिक ज्ञानी हैं। कुछ ऐसे विषय भी हैं, जिनका ककहरा भी मैं नहीं जानता। फिर भी अहंकार! काश! मेरे पास केवलज्ञान होता तो अभिमान का प्रसंग आता। ज्ञान के अथाह सागर की एक छोटी-सी बूंद पाकर भी मैं गर्व करूंगा तो वह कब तक टिकेगा?

अभिमान के लिए दूसरा तत्त्व है दर्शन। मेरा सौभाग्य है कि मुझे सम्यक्त्व की उपलब्धि हुई है, पर इसका क्या अहम्? यह तो क्षायोपशमिक सम्यक्त्व है। काश! मुझे क्षायक सम्यक्त्व उपलब्ध होता और मैं कह सकता कि सम्यगदर्शन की जिस भूमिका पर मैं खड़ा हूं, वहां से मुझे कोई नहीं गिरा सकता।

चारित्र का अभिमान करने का प्रसंग तब आता, जब मुझे यथाख्यात चारित्र प्राप्त होता। जिस चारित्र में एकांततः निर्मलता ही निर्मलता है। जिस चारित्रिक पवित्रता के बाद अतिचार का रास्ता ही बंद हो जाता है, उसी का अभिमान किया जा सकता है।

तपस्या का जहां तक प्रश्न है, छह महीने की तपस्या करनेवाले अनेक साधक हो चुके है। ऐसे साधक भी हुए हैं, जिन्होंने छह महीने तक निरंतर भोजन किया, पर पानी की एक घूंट भी नहीं ली। उनके सामने मेरी तपस्या क्या है? मैंने अपने जीवन में इतनी बड़ी कोई तपस्या कभी की ही नहीं। बड़ी तपस्या की बात छोड़ो, साधारण तप भी कितना किया है? पूरे जीवन में दो तेले। यह भी कोई तपस्या है? काश! मैं भगवान महावीर जितना तप कर पाता तो मुझे भी अभिमान का मौका मिल जाता।

बल का अभिमान। शरीर तो इतना नाजुक है। वज्रऋषभनाराच संहननवाला शरीर होता, बाहुबलि

जितना बल होता तो उसका अभिमान करना सार्थक हो जाता। क्या मेरा बल अभिमान करने जैसा है?

बुद्धि का अभिमान! मेरे पास बुद्धि है। मैं उसका उपयोग करता हूं, पर अभयकुमार जैसी बुद्धि कहां है? इस थोड़ी-सी बुद्धि का क्या अभिमान करूं?

स्मृति का अभिमान! मुझे आज भी बचपन की बातें याद हैं। पूज्य कालूगणी के सान्निध्य की बातें याद हैं। उनसे सीखी हुई और पढ़ी हुई अनेक बातें याद हैं। पर, स्थूलिभद्र की बहन यक्षा जैसी स्मृति कहां है? वह सौ श्लोक एक बार सुनते ही याद कर लेती थी। दूसरी बहन दो बार और तीसरी बहन तीन बार सुनकर सौ श्लोक सुना देती थी।

रूप का अभिमान! कहां सनतकुमार का रूप! कहां मघवा का रूप और कहां मैं! ऐसे रूप का अभिमान किया जा सकता है क्या?

ऐश्वर्य का अभिमान! मेरे पास ऐसा क्या ऐश्वर्य है? कौन-सी सम्पदा है? ऐश्वर्य तो शालिभद्र के पास था। वैसा ऐश्वर्य होता तो अभिमान का प्रसंग आता।

मेरे पास ऐसा कुछ भी नहीं है, फिर भी मैं अभिमान करता हूं। मेरे पास कुछ होता तो अहंकार करना सार्थक हो जाता। यह व्यर्थ का अहं कब तक टिकेगा?

यह एक रास्ता है चिंतन के द्वारा अभिमान को निरस्त करने का।

अभिमान से दबता है व्यक्ति

यह संसार है। इसमें सब प्रकार के व्यक्ति होते हैं। कुछ व्यक्ति ऐसे होते हैं, जो कर्तव्यनिष्ठा या परोपकार की भाषा नहीं समझते। आर्थिक संपन्नता का लाभ उठाते हुए वे दान-पुण्य करते हैं, पर उनके पीछे नाम और प्रतिष्ठा की भावना काम करती है। कुछ व्यक्ति ऐसे होते हैं, जो स्वार्थ से ऊपर उठकर आचरण करते हैं। पद, प्रतिष्ठा और नाम की भूख से दूर रहते हैं।

यह प्रकृति भी बड़ी विचित्र है। यह हर व्यक्ति के जीवन में कुछ-न-कुछ कमी रख देती है। कोई विद्वान है तो रूपवान नहीं है। किसी के पास रूप है तो विवेक नहीं है। कोई अच्छा गायक है, पर व्याख्याता नहीं है। कोई व्यक्ति अनेक योग्यताएं रखता है, पर उसकी आकृति ठीक नहीं है। यह स्थिति मनुष्य को चिंतन के लिए मजबूर करती है। उसके पास अभिमान के लायक क्या है? जहां अभिमान होता है, वहां क्रोध भी होता है। ये दोनों युगल सहोदर हैं। एक को देखकर दूसरा जाग जाता है। साधुवाद के पात्र वे हैं, जो इन पर विजय प्राप्त कर मनुष्य जीवन को सार्थक बनाते हैं।

अचिंतन भी एक रास्ता है

संसार में जितने महापुरुष हुए हैं, उन्होंने बहुत सहन किया है। सहन किए बिना कोई महान् बन नहीं पाता। भगवान महावीर का जीवन साक्षी है। उन्होंने कितने मान-अपमान सहन किए। आचार्य भिक्षु को कितना सहना पड़ा। उनके स्थान पर कोई दूसरा होता तो टिक नहीं पाता। वे महावीर थे, महान् पराक्रमशाली थे, इसलिए उन्होंने सहन किया। हमको भी सहन करना है। सहनशीलता बढ़ाए बिना अभिमान से छुटकारा नहीं होगा। इस प्रकार का चिंतन अभिमान को कम करने में सहयोगी बनता है।

सच्चिंतन से अभिमान को कम करना, यह एक रास्ता है। दूसरा रास्ता है अचिंतन का। चिंतन छूटते ही ध्यान की भूमिका में प्रवेश हो जाता है। प्रेक्षाध्यान का अभ्यास जितना पुष्ट होगा, अभिमान उतना ही कम होता जाएगा। अभ्यास की इस प्रक्रिया में दीर्घश्वासप्रेक्षा हो, कण्ठ का कायोत्सर्ग हो, जलंधरबंध हो, खेचरीमुद्रा हो अथवा मृदुता की अनुप्रेक्षा हो, ये सब प्रेक्षाध्यान के प्रयोग हैं। इन प्रयोगों से क्या परिणाम आता है? यह कहने की नहीं, प्रयोग कर देखने की बात है। जो प्रयोग करेंगे, वे निश्चित रूप से लाभान्वित होंगे। जिन-जिन लोगों ने प्रयोग किया है, उन्होंने धन्यता का अनुभव किया है। इस आधार पर प्रत्येक चिंतनशील व्यक्ति को अहंकार-विसर्जन के प्रयोग करने चाहिए। ❑

आत्मपक्ष के सम्मुख, सभी लक्ष्य फीके लगते हैं।
मिथ्या मानदंड उन्नति के, खुद को ही ठगते हैं।।

समाज-विकास का आधार : विधायक भाव

जहां एक से अधिक व्यक्ति एक साथ मिलकर रहते हैं, मिल-बांटकर काम करते हैं और एक-दूसरे के सुख-दुःख में सहभागी बनते हैं, वहां समाज बन जाता है। सामाजिक जीवन, जीने की एक शैली है। दूसरी शैली है वैयक्तिक। दूसरी शैली से आने वाला व्यक्ति अकेला रहता है, अकेला सोचता है और अपना सुख-दुःख स्वयं भोगता है। इस कोटि का व्यक्ति संसार से उदासीन और आत्मलीन योगी हो सकता है अथवा पराकाष्ठा तक पहुंचा हुआ स्वार्थी व्यक्ति ऐसा जीवन पसंद करता है। इस जीवन में विकास की नई दिशाओं को खोलने का अवकाश कम रहता है, क्योंकि अंतर्मुखता की स्थिति में बहुमुखी दिशाएं सिमटकर एकमुखी हो जाती हैं। दूसरी ओर उत्कृष्ट कोटि की स्वार्थपरता में विकास की संभावना ही समाप्त हो जाती है। इस दृष्टि से यह मत स्थिर हो सकता है कि व्यक्ति को विकास के लिए समूह के साथ जुड़ना जरूरी है।

सामूहिक जीवन में कुछ कठिनाइयों की उपस्थिति अपरिहार्य है, पर वहां कुछ विशेष सुविधाएं भी मिलती हैं। इसलिए व्यक्ति सामूहिक जीवन स्वीकार करता है। समूह-चेतना को विकास के अवसर न मिलें तो वहां जड़ता की काली छाया मंडराने लगती है। सवाल यह है कि सामाजिक विकास का स्वरूप क्या है और वह कैसे हो सकता है? स्वरूप की दृष्टि से विकास को किसी एक ही फ्रेम में फिट करना मुश्किल है। देश, काल, परिस्थिति, समाज की बनावट, समाज की अपेक्षा और समाज में जीने वाले व्यक्तियों की महत्त्वाकांक्षा के अनुसार विकास की अनेक अवधारणाएं स्थिर की जा सकती हैं। मेरे अभिमत से विकास कैसा हो? इससे भी अहम प्रश्न है—विकास कैसे हो? विकास का मूल है विधायक भाव। जिस समाज के लोग विधायक चिंतन करते हैं, विधायक नजरिया रखते हैं और विधायक भाव से काम करते हैं, वहां विकास के लिए आगे से आगे दरवाजे खुलते जाते हैं। निषेधात्मक भाव विकास में सबसे बड़ी बाधा है। निषेधात्मक भावों में जानेवाले व्यक्ति न मन से स्वस्थ रह सकते हैं, न शरीर से स्वस्थ रह सकते हैं और न अपने व्यक्तित्व को स्फुरणशील बनाए रख सकते हैं। निराशा, कुंठा, अनुत्साह, चिंता, कर्तव्य-विमुखता आदि शिकंजे आदमी को उतने ही कसते हैं, जितने वे निषेधात्मक भावों में जीते हैं।

विधेयात्मक भाव जीने के प्रति ही आशा नहीं जगाते, व्यक्ति को कर्तव्य के क्षेत्र में उतार देते हैं। श्रमशीलता, सहनशीलता, आचारनिष्ठा, विनम्रता, प्रामाणिकता आदि विधायक भावों की निष्पत्तियां हैं। इन भावों में जीनेवाले लोग अपने सम्मान और दूसरे के अपमान से सुखी नहीं होते। वास्तव में वे किसी का अपमान देख भी नहीं सकते। ऐसे लोग श्रम के देवता होते हैं। वे कभी किसी का शोषण नहीं करते। किसी को धोखा नहीं देते। समाज के अंतिम व्यक्ति तक सबको अपना आत्मीय मानते हैं। ऐसे व्यक्ति जिस समाज में होते हैं, वह समाज उत्तरोत्तर विकास के रास्ते मापता रहता है।

जो लोग विधायक भावों में नहीं जीते, जो यह सोचते हैं कि मुझे कितना जीना है, अधिक-से-अधिक पचास-साठ वर्ष, इस छोटे-से जीवन में मैं कब तक काम करता रहूंगा, अब आने वाले सोचें, मैं जो कुछ करूंगा, उसका उपभोग तो कर नहीं सकूंगा, बिना मतलब इतना श्रम क्यों करूं—इस प्रकार का चिंतन समाज या समाज-विकास के लिए घातक है।

एक अस्सी वर्ष का व्यक्ति बाग में आम के पेड़ लगा रहा था। कोई राहगीर उधर से गुजरा। उसने पूछा- 'बाबा! क्या कर रहे हो?' वह बोला—'मैं आम के पेड़ लगा रहा हूं।' 'तुम्हारी उम्र कितनी है, बाबा?' राहगीर ने पूछा। बाबा बोला—'अस्सी पार करने वाला हूं।' 'आम

कितने वर्षों में फलेगा, बाबा?' राहगीर के इस प्रश्न पर बाबा बोला–'बारह वर्ष तो लग ही जाएंगे।' राहगीर सहानुभूति प्रकट करते हुए बोला–'बाबा! बारह वर्ष बाद कौन खाएगा इन फलों को? क्या तुम इतने दिनों तक जिंदा रह सकोगे?'

बाबा ने अपनी झुकी हुई नजरें ऊपर उठाईं। उसने राहगीर की ओर देखकर कहा- 'तुम भारतीय हो क्या, जो ऐसी बात कर रहे हो? मैं जो श्रम कर रहा हूं, क्या अपने लिए कर रहा हूं?' मेरे बाल-बच्चे, मेरा परिवार, मेरा समाज और मेरा देश–सभी को लाभ मिलेगा।' भारत पर किए गए इस करारे व्यंग्य से राहगीर तिलमिला उठा, पर वह कर भी क्या सकता था? व्यक्ति केवल अपने आप तक सीमित रहे, यह समाजवाद का सूत्र नहीं है। इससे समाज का विकास नहीं हो सकता।

एक बार मेघों ने घोषणा कर दी कि बारह वर्षों तक पानी नहीं बरसेगा। आषाढ़ का महीना आया। किसान कंधे पर हल रखकर खेत की ओर चला। मेघों ने उसको टोकते हुए कहा–'पानी नहीं बरसेगा, हल लेकर क्यों जा रहा है?' किसान सुना-अनसुना कर खेतों में चला गया। दूसरे वर्ष ऐसा ही हुआ। फिर तीसरे वर्ष भी यही हुआ। मेघों ने पूछा–'बारह वर्ष तक पानी नहीं बरसेगा, यह जान लेने के बाद भी तुम हर साल खेत में क्यों जाते हो?' किसान संजीदगी के साथ बोला–'मैं जानता हूं कि पानी नहीं बरसेगा। फिर भी मैं खेत में जाऊंगा और हल जोतूंगा, क्योंकि मुझे अपनी भावी पीढ़ी को पंगु नहीं बनाना है। वर्षा न होने के कारण मैंने हल चलाना छोड़ दिया तो मेरे बच्चे हल चलाना भूल नहीं जाएंगे?' यह चिंतन समाज-विकास का सूत्र है।

'मैं पीया, मेरा बैल पीया, अब चाहे कुआं ढह पड़े'–इस भाषा में सोचनेवाले लोग समाज-विकास के मूल पर प्रहार करते हैं। इस प्रकार की तुच्छ स्वार्थ-भावना विकास के रास्तों को बंद कर समाज को अंधेरे गलियारों में ले जाकर छोड़ देती है। समाज का विकास करना है तो स्वार्थ की चेतना से ऊपर उठना ही होगा।

समाज-विकास का मूलभूत आधार है–मानवीय मूल्यों की प्रतिष्ठा। जिस समाज के लोग प्रामाणिक नहीं हैं, सहनशील नहीं हैं, करुणाशील नहीं हैं, संयमी नहीं हैं, स्वावलंबी नहीं हैं, वहां समाज-विकास की कल्पना भी नहीं हो सकती। मूल्यों की धरती पर ही विकास के बीजों का वपन हो सकता है। बीज कितने ही बढ़िया और कीमती क्यों न हों, उपजाऊ धरती न मिले तो उनका अस्तित्व ही समाप्त हो जाएगा। विकास के कितने ही सपने देखे जाएं, जीवन में मानवीय मूल्यों की स्थापना जब तक नहीं होगी, एक-एक कर सारे स्वप्न बिखरते चले जाएंगे, पर विकास नहीं होगा।

आर्थिक विकास समाज की एक अपेक्षा है। उसे नकारा नहीं जा सकता, पर जो समाज अर्थ-प्रधान बन जाए, जहां विकास का मेरुदण्ड अर्थ बन जाए, वहां समस्याएं पैदा हो जाती हैं। केवल आर्थिक विकास के आधार पर खड़े होने वाले समाज का आयुष्य अधिक लंबा नहीं हो सकता, इसलिए समाज में इस समीक्षात्मक दृष्टिकोण का निर्माण होना भी जरूरी है कि किस तत्त्व को कितना मूल्य दिया जाए।

विकास का एक सूत्र है–धर्म। अधिकांश लोग धर्म की आराधना करते हैं मोक्ष के लिए, परलोक सुधारने के लिए अथवा परंपरा का निर्वाह करने के लिए। मोक्ष धर्माराधना की अंतिम परिणति है। वह व्यक्ति की आखिरी मंजिल है, पर मध्यवर्ती पड़ाव सही नहीं होंगे तो मंजिल की दूरी बढ़ती रहेगी। इस दृष्टि से सबसे पहले धर्म का आचरण व्यक्ति, परिवार तथा समाज के विकास को लक्ष्य में रखकर करना जरूरी है। जीवन में धार्मिकता का अवतरण हुए बिना विकास की कल्पना साकार नहीं हो सकती।

विचारों के विस्तार को किसी एक बिंदु पर केंद्रित किया जाए तो उसका फलित होगा–विकास। विकास की आधारशिला है अणुव्रत। अणुव्रत का एक-एक सूत्र ऐसा प्रकाश-स्तंभ है, जो मूल्यहीनता के चौराहे पर भटके हुए लोगों को विकास का सही रास्ता दिखा सकता है। जिन लोगों ने अणुव्रत के आधार पर जीने की शैली अपनाई है, वे सहज रूप से समाज-विकास के पथ पर अग्रसर हो रहे हैं। जिनके मन में ऐसी तड़प है, जो सही अर्थ में विकास के इच्छुक हैं, उन्हें देर-सबेर इस रास्ते पर आना ही होगा। ❑

संसद खड़ी है जनता के सामने

क्या राजनीति का अपना कोई चरित्र नहीं?

बहुत बार मन में प्रश्न उभरता है कि क्या राजनीति का अपना कोई चरित्र नहीं होता अथवा सत्ता प्राप्ति के लिए राष्ट्र, समाज, दल और व्यक्ति की विश्वासपूर्ण भावनाओं के साथ खिलवाड़ करना ही राजनीति का चरित्र होता है। जनता की कोमल भावनाओं का शोषण करके सत्ताहीन होने के बाद क्या राजनेता का व्यक्तित्व जनता और राष्ट्र से भी बड़ा हो जाता है? यदि ऐसा नहीं है तो आज की राजनीति क्यों अपने प्रिय पुत्रों, संबंधियों और चमचों/चाटुकारों के चक्रव्यूह में फंसकर रह गई है? राष्ट्र को स्थिर नेतृत्व प्रदान करने के नाम पर सिद्धांतहीन समझौते और स्तरहीन कलाबाजियां क्यों दिखाई जा रही है? संप्रदायवाद, जातिवाद, भाषावाद और प्रांतवाद को भड़का करके क्यों सत्ता की गोटियां बैठाई जा रही हैं? यह सब देखकर अनायास ही मन ग्लानि और वितृष्णा से भर जाता है, फिर दूसरा प्रश्न उभर कर आता है, आखिर यह सब कुछ कब तक चलता रहेगा?

महाकवि रवींद्रनाथ ठाकुर का एक कथा प्रसंग इस संदर्भ में मुझे स्मरण आ रहा है। राजपथ पर भगवान जगन्नाथ की रथयात्रा बड़ी धूमधाम से निकल रही है। सैकड़ों श्रद्धालुजन उस भीमकाय रथ को बड़ी श्रद्धा भावना से खींचने में लगे हैं। हजारों भक्त-जन बीच-बीच में साष्टांग दंडवत प्रणाम करते हुए रथयात्रा में सम्मिलित हो रहे हैं। यह सारा उत्सव देखकर रथ, पथ और मूर्ति गर्वोत्कर्ष में मन ही मन फूले नहीं समा रहे हैं। तीनों सोच रहे हैं कि ये भक्ति संभृत प्रणाम, मंत्रोच्चारण, भजन कीर्तन, जय जय का तुमुलनाद हमारे लिए ही हो रहा है। जबकि अंतर्यामी प्रभु इन सबके अज्ञानजनित अहं के उत्कर्ष पर मन ही मन हंस रहे हैं। रवींद्र इसी स्थिति का मार्मिक चित्रण करते हुए कहते हैं—

रथ भावे आमी देव, पथ भावे आमी।
मूर्ति भावे आमी देव, हंसे अंतर्यामी।।

रथ सोच रहा है, यह प्रणाम मुझे हो रहा है और पथ सोच रहा है मुझे। मूर्ति अपने में ही भ्रम पाले हुए है और अंतर्यामी प्रभु रथ, पथ और मूर्ति की नादानी पर हंस रहे हैं।

ऐसा लगता है कि आज के राजनैतिक चरित्र पर यह व्यंग्य बहुत ही सटीक बैठता है। हर किसी राजनेता को यह भ्रम पैदा हो गया है। उसे अनुभव होता है कि उसके सत्तासीन होने से ही अथवा प्रधानमंत्री बनने से ही देश को स्वच्छ प्रशासन मिल सकता है। यह कुर्सी उसका ही वरण करना चाहती है। आज वह कुर्सी पर नहीं है, इसलिए देश की यह दुर्दशा हो रही है। अतः येन-केन-प्रकारेण कुर्सी प्राप्त करनी होगी, ताकि देश का निर्माण हो सके और 'राष्ट्र की कोटि-कोटि जनता नेताओं के विदूषक व्यक्तित्व पर मन ही मन हंस रही है।

प्रजा ही राष्ट्र

इसमें कोई संदेह नहीं कि राष्ट्र के मस्तक पर आसीन व्यक्तित्व के राजनैतिक चरित्र से जनता को निराशा ही हुई, किंतु निराशा होने से कुछ नहीं होगा। हमें इस रोग का इलाज सोचना होगा। किंकर्तव्यविमूढ़ बनकर बैठने से कोई लाभ नहीं होनेवाला है। हमें रोग का सही निदान खोजना होगा। उपचार भी तभी हो सकेगा। इस दृष्टि से भारतीय जनता पर एक बहुत बड़ी जिम्मेदारी आ जाती है।

यद्यपि आज जनता-जनार्दन पहले से बहुत प्रबुद्ध है, किंतु ऐसा लगता है कि अभी भी उनका शिव स्वरूप जाग्रत नहीं हुआ है। भारतीय जनता को यह अच्छी तरह समझना होगा कि कुछ नेताओं से कभी कोई राष्ट्र नहीं बनता। वस्तुतः प्रजा ही राष्ट्र है। सहस्राब्दियों पूर्व हमारे मंत्रद्रष्टा ऋषियों ने गाया—'राष्ट्राणि वै विशः'—प्रजा ही राष्ट्र है। विशिष्ट राजा प्रतिष्ठित—राजा की स्थिति भी प्रजा पर निर्भर है। राजाओं की स्थिति भी

प्रजा का समर्थन करती थी। अब तो स्थितियां सर्वथा भिन्न है। राज्य व्यवस्था का स्वरूप ही प्रजातांत्रिक हो गया है। इस अवस्था में जनता को यह समझना बहुत जरूरी है कि जब तक वह अपना तृतीय शिव नेत्र नहीं खोलेगी, तब तक नेता के रूप में देश के साथ खिलवाड़ करनेवाला कामदेव भस्म होनेवाला नहीं हैं।

संसद जनता के सामने

जब मैं दिल्ली में था। संसदीय कक्ष में मुझे संसद सदस्यों और मंत्री परिषद के सदस्यों के बीच अपने विचार प्रकट करने का अवसर मिला। वहां मैंने विशेष रूप से एक बात कही थी। उसी बात को मैं आज जनता के समक्ष दोहराना चाहता हूं, क्योंकि उसका सीधा संबंध जनता से ही है।

एक बार विद्या ने ब्राह्मण से कहा–'मैं आपकी निधि हूं। आप मेरी रक्षा करें। ब्राह्मण ने पूछा–'आपके सामने ऐसी क्या कठिनाई है?' विद्या ने कहा–'जो व्यक्ति मेरे योग्य नहीं है, आप उनके साथ भी मेरा पाणिग्रहण कर देते हैं। जिस किसी के साथ मेरा गठबंधन कर देते हैं। कम से कम ऐसा तो नहीं होना चाहिए।' ब्राह्मण ने पूछा–'आखिर तुम चाहती क्या हो?' विद्या ने अपनी बात स्पष्ट करते हुए कहा–'आप कृपा करके मुझे तीन प्रकार के व्यक्तियों से बचाएं। प्रथम तो वे, जो पर दोषदर्शी हैं। दूसरों के दोषों को देखना ही जिनका प्रमुख व्यवसाय है। दूसरे वे, जो मायावी हैं, कुटिल हैं और तीसरे वे, जो असंयमी हैं, चरित्रहीन हैं। इन तीन प्रकार के व्यक्तियों से आप मेरी रक्षा करें।'

आज के संदर्भ में संसद यही पुकार लेकर जनता के समक्ष खड़ी है। वह जनता से चिल्ला-चिल्लाकर कह रही है कि आप कृपा करके तीन प्रकार के व्यक्तियों को चुनकर संसद में मत भेजिए। पहले वे जो परदोषदर्शी हैं। दूसरे वे दोष ही देखनेवाले हैं। अच्छाई में भी बुराई देखनेवाले हैं। पिछली सरकार के अच्छे कार्यों को भी उलटनेवाले हैं। वह हमारे दल का नहीं, इसलिए उसमें कोई अच्छाई हो ही नहीं सकती। इस तरह जिनकी दृष्टि मोती पर नहीं, मछलियों पर है, वैसे सदस्यों को आप मेरे पास मत भेजिए।

उन लोगों को भी आप मेरे पास मत भेजिए जो कुटिल हैं, मायावी हैं, नेता नहीं, अभिनेता है। असली पात्र नहीं, मात्र विदूषक की भूमिका निभानेवाले हैं। कुर्सी के लिए हर प्रकार का षड्यंत्र रच सकते हैं, गलत तत्त्वों से सांठ-गांठ कर सकते हैं, चरित्र हनन कर सकते हैं। सत्ता प्राप्ति के लिए अकरणीय जैसा उनके लिए कुछ भी नहीं है। जिस जनता के कंधों पर बैठकर केंद्र तक पहुंचते हैं, उसके साथ भी धोखा कर सकते हैं। जिस दल के घोषणा-पत्र पर चुनाव जीतकर आए हैं, उसकी पीठ में भी छुरा भोंक सकते हैं। इस प्रकार के कुटिल-जटिल, दंभी व्यक्तियों को आप मेरे पास मत भेजिए।

तीसरे उन व्यक्तियों को आप मुझसे दूर रखिए जो असंयमी हैं, चरित्रहीन हैं, जो सत्ता में आकर राष्ट्र से भी अधिक अपने परिवार को महत्त्व देते हैं, देश से भी अधिक अपने जाति संप्रदाय को महत्त्व देते हैं। सत्ता जिनके लिए सेवा का साधन नहीं, अपने विलास का साधन है। सत्ता जिनके लिए कल्याण का माध्यम नहीं, किंतु प्रतिशोध का माध्यम है। जिनकी न व्यक्तिगत छवि अच्छी है और न राष्ट्रीय छवि ही। उस प्रकार के व्यक्तियों से भी मुझे बचाइए। भारतीय संसद भारतीय जनता के द्वार पर ही अपनी मर्मभेदी पुकार लेकर खड़ी है।

राष्ट्र का भविष्य

आज राजनैतिक चरित्र को यदि उज्ज्वल बनाए रखना है, संसद की गरिमा, पवित्रता और मान मर्यादा को बनाए रखना है, संसद को स्वस्थ, सुदृढ़ एवं सुसंस्कार संपन्न बनाना है तो संपूर्ण भारतीय समाज को इस दिशा में प्रबुद्ध होना होगा, अपने दायित्व को समझना होगा और सामने खड़ी परीक्षा की घड़ी में अपनी निर्णायक मनीषा से देश की तस्वीर को उज्ज्वलतम बनाना होगा। वह राजनीतिज्ञ अयोग्य है, जो केवल भावी निर्वाचन के विषय में सोचता है। योग्य राजनीतिज्ञ वह है, जो देश की भावी पीढ़ी के विषय में चिंता करता है। सचमुच! ऐसे ही निपुण राजनेताओं के हाथों देश का भविष्य सुरक्षित रह सकता है। ❑

चारित्रिक मूल्यों के प्रति अनास्था क्यों?

रेशम के धागों में लगी गांठों को सुलझाना सरल नहीं है। मनुष्य का मन भी रेशम के धागे जैसा जटिल है। उसे सुलझाने के प्रयत्न भी उलझनों को बढ़ाने वाले हो जाते हैं। इन्हीं उलझनों के कारण मनुष्य अपनी संस्कृति के प्राणवान पहलुओं को नजरअंदाज कर देता है। हिन्दुस्तान की संस्कृति में अपनेपन की पुट है, अहिंसा एवं करुणा की पदचाप है, सदाचार की आहट है। बावजूद इसके पारिवारिक एवं सामाजिक रिश्ते टूट रहे हैं। अपनेपन की सोच धुंधली हो रही है। हिंसा और क्रूरता की. वारदातें बढ़ रही हैं। दुराचार की रफ्तार तेज हो रही है। यह सब क्यों होता है? क्या हम अपनी संस्कृति को भूल गए हैं? क्या इस देश की धरती पर नई संभावनाओं के अंकुर नहीं फूटेंगे? ये कुछ ऐसे प्रश्न हैं, जो दिन-रात आंखों में खटकते रहते हैं।

हिन्दुस्तान की अपनी पहचान है। आज उसके सामने भी पहचान का संकट सिर उठाए खड़ा है। ऐसा संकट तब आता है, जब कोई समाज या देश परिवर्तन के दौर से गुजरता है। परिवर्तन के इस दौर में मूल्य मानक बदलते हैं, भूमिकाएं बदलती हैं, जीवनशैली बदलती है, पर व्यक्ति ज्यों का त्यों स्थिर रहता है। जिस समय व्यक्ति की पहचान उसके राष्ट्र के आधार पर होने लगेगी, राष्ट्रीय पहचान का संकट अपने आप समाप्त हो जाएगा।

परिवर्तन वह तत्त्व है, जिसके प्रभाव से जड़ और चेतन कोई भी मुक्त नहीं है। परिवर्तन का अपना चरित्र है। उस चरित्र को सही आकार तब मिलता है, जब व्यक्ति अपनी विचारधारा, दृष्टि और सोच में भी सही परिवर्तन लाता है। जब तक परिवर्तन की अवधारणा स्पष्ट नहीं होती, अहिंसा और सदाचार के मूल्य भी स्वीकृत नहीं होते।

कुछ लोगों का चिन्तन है कि हिन्दुस्तान की धरती पर राम आए, कृष्ण आए, महावीर आए, गांधी आए, और भी अनेक महापुरुष आए। वे हिंसा और क्रूरता को नहीं मिटा सके। क्या अब उनको नामशेष किया जा सकता है? प्रश्न ठीक है। हमें इस बात को नहीं भूलना है कि यह संसार है। इसमें क्रूरता भी रहेगी, करुणा भी रहेगी। हिंसा भी रहेगी, अहिंसा भी रहेगी। दुराचार भी रहेगा, सदाचार भी रहेगा। हमें एक ही काम करना है कि क्रूरता, हिंसा एवं दुराचार का पलड़ा भारी हो रहा है, उसके स्थान पर करुणा, अहिंसा और सदाचार का पलड़ा भारी करना है। अहिंसा के प्रति आस्थाशील लोग यह छोटा-सा संकल्प स्वीकार कर लें तो भी देश की सांस्कृतिक पहचान स्थिर हो सकती है।

आज की सबसे बड़ी त्रासदी है चारित्रिक मूल्यों के प्रति अनास्था। एक पीढ़ी की अनास्था आने वाली कई पीढ़ियों में संक्रांत हो जाती है। इसी प्रकार आस्था का भी संक्रमण हो सकता है। मेरा यह निश्चित विश्वास है कि जिस दिन चरित्र की आस्था संक्रमणशील हो जाएगी, चरित्रहीनता और मूल्यहीनता की खोखली दीवारें भरभराकर गिर पड़ेगी। ❑

संबोधन अलंकरण समारोह

श्रद्धेय आचार्यप्रवर जिन श्रावक-श्राविकाओं को उनकी जीवनगत श्रेष्ठताओं के आधार पर विशेष संबोधनों से संबोधित करते हैं, उनको जैन श्वेतांबर तेरापंथी महासभा प्रतिवर्ष मर्यादा महोत्सव के अवसर पर पूज्यप्रवरों की पावन सन्निधि में आयोजित विशेष कार्यक्रम में अलंकरण प्रदान कर सम्मानित करती है। गत कई वर्षों से उक्त अवसर पर महासभा द्वारा अलंकरण प्राप्त श्रावक-श्राविकाओं की **सचित्र परिचय पुस्तिका** भी प्रकाशित की जाती है।

संबोधन अलंकरण समारोह—आगामी टापरा मर्यादा महोत्सव के अवसर पर माघ शुक्ला चतुर्थी, दिनांक 14 फरवरी, 2013 को दोपहर 2.00 बजे से पूज्यवरों के पावन सान्निध्य में आयोजित है। इस अवसर पर एक मिलन गोष्ठी का आयोजन दिनांक 13 फरवरी, 2013 को सायंकाल किया जाएगा।

महासभा द्वारा प्रदत्त संबोधन अलंकरण प्राप्तकर्ताओं के नाम इस प्रकार है—

क्रम सं.	उपसर्ग	नाम	स्थान	अलंकरण
1.	श्री	बाबूलाल कच्छारा	रिंछेड़—मुम्बई	शासनसेवी
2.	श्री	पुखराज परमार	मगरतलाव—चेन्नई	शासनसेवी
3.	श्री	सुरेन्द्र बोथरा	बीकानेर	शासनसेवी
4.	श्री	सोहनराज बुरड़	जसोल—सूरत	तपोनिष्ठ श्रावक
5.	श्रीमती	धर्मी देवी तलेसरा	बालोतरा	तपोनिष्ठ श्राविका
6.	श्रीमती	दिवाली देवी बुरड़	बालोतरा—ईरोड़	तपोनिष्ठ श्राविका
7.	श्रीमती	कंचनबाई गेलड़ा	बोरावड़—शहादा	तपोनिष्ठ श्राविका
8.	श्रीमती	वरजु देवी बालड़	बालोतरा	तपोनिष्ठ श्राविका
9.	श्री	बच्छराज (चोरड़िया) जैन	टमकोर—राजामुन्द्री	महादानी श्रावक
10.	स्व.	मूलचन्द सामसुखा	रायसर—बुरहानपुर	महादानी श्रावक
11.	श्री	मदनलाल छाजेड़	समदड़ी	महादानी श्रावक
12.	श्री	सोहनलाल सालेचा	जसोल	महादानी श्रावक
13.	श्रीमती	अनुदेवी सालेचा	जसोल	महादानी श्राविका
14.	श्रीमती	भिखी देवी सेठिया	मोमासर—जयपुर	महादानी श्राविका
15.	श्रीमती	धर्मीदेवी छाजेड़	समदड़ी	महादानी श्राविका
16.	श्री	अचलचन्द बोकड़िया	जसोल—हिरियूर	श्रद्धानिष्ठ श्रावक
17.	श्री	अर्जुनलाल चावत	सरेवड़ी—बेंगलोर	श्रद्धानिष्ठ श्रावक
18.	श्री	अशोक कुमार डूंगरवाल	राजसमन्द	श्रद्धानिष्ठ श्रावक
19.	श्री	बाबुलाल बोकड़िया	जसोल	श्रद्धानिष्ठ श्रावक
20.	श्री	बच्छराज पारख	चूरू—चेन्नई	श्रद्धानिष्ठ श्रावक

क्रम सं.	उपसर्ग	नाम	स्थान	अलंकरण
21.	श्री	बच्छराज बांठिया	चूरू–सूरत	श्रद्धानिष्ठ श्रावक
22.	श्री	बालचन्द बोथरा	बीदासर–कोलकाता	श्रद्धानिष्ठ श्रावक
23.	स्व.	भँवरलाल जी बैंगानी	बीदासर–दिल्ली	श्रद्धानिष्ठ श्रावक
24.	श्री	भवरीलाल छल्लाणी	आर्णी–महाराष्ट्र	श्रद्धानिष्ठ श्रावक
25.	श्री	भेरुलाल संकलेचा	पाली	श्रद्धानिष्ठ श्रावक
26.	स्व.	भंवरलाल जी बाबेल	बागौर–भीलवाड़ा	श्रद्धानिष्ठ श्रावक
27.	श्री	चाँदमल मेहर	कुकरखेड़ा–रायगड़	श्रद्धानिष्ठ श्रावक
28.	श्री	चम्पालाल बागरेचा	पारलू	श्रद्धानिष्ठ श्रावक
29.	श्री	चम्पालाल गोगड़	बालोतरा	श्रद्धानिष्ठ श्रावक
30.	स्व.	चन्दनमल जी बुरड़	जसोल	श्रद्धानिष्ठ श्रावक
31.	श्री	चन्द्रभान जैन	हांसी	श्रद्धानिष्ठ श्रावक
32.	स्व.	छगनराज जी तातेड़	जोधपुर	श्रद्धानिष्ठ श्रावक
33.	श्री	छगनराज पालगोता	टापरा	श्रद्धानिष्ठ श्रावक
34.	श्री	देवराज ढ़ेलड़िया	जसोल–गांधीधाम (कच्छ)	श्रद्धानिष्ठ श्रावक
35.	श्री	डुंगरचन्द वडेरा	जसोल	श्रद्धानिष्ठ श्रावक
36.	श्री	डालचंद कोठारी	रींछेड़–मुम्बई	श्रद्धानिष्ठ श्रावक
37.	श्री	धनराज ओस्तवाल	बालोतरा	श्रद्धानिष्ठ श्रावक
38.	स्व.	धनपत सिंह जी जैन	हिसार	श्रद्धानिष्ठ श्रावक
39.	स्व.	धनपत जी सुराणा	कांकरिया–मणिनगर	श्रद्धानिष्ठ श्रावक
40.	श्री	गुलाबचन्द चौपड़ा	बाड़मेर	श्रद्धानिष्ठ श्रावक
41.	श्री	गणपतलाल सिंघवी	आशाहोली–मुम्बई	श्रद्धानिष्ठ श्रावक
42.	श्री	गौतमचन्द एम. भंसाली	जसोल–मुम्बई	श्रद्धानिष्ठ श्रावक
43.	श्री	गौतमचन्द माण्डोत	जसोल–बालोतरा	श्रद्धानिष्ठ श्रावक
44.	स्व.	घीसुलाल जी कोठारी	केलवा	श्रद्धानिष्ठ श्रावक
45.	श्री	घेवरचन्द गाँधी मेहता	बालोतरा	श्रद्धानिष्ठ श्रावक
46.	श्री	हंसराज लूणिया	तारानगर	श्रद्धानिष्ठ श्रावक
47.	श्री	हरकचंद भंडारी	पेटलावद	श्रद्धानिष्ठ श्रावक
48.	श्री	हनुमानमल छाजेड़	रासीसर–जलगांव	श्रद्धानिष्ठ श्रावक
49.	श्री	जवेरीलाल रांका	बालोतरा	श्रद्धानिष्ठ श्रावक
50.	स्व.	जुगराज जी बम्बोली	रानी–मुम्बई	श्रद्धानिष्ठ श्रावक
51.	स्व.	जेठमल जी कोठारी	कामठी–इन्दौर	श्रद्धानिष्ठ श्रावक
52.	श्री	जेठमल नाहटा	गंगाशहर	श्रद्धानिष्ठ श्रावक
53.	श्री	खूबचंद भंसाली	जसोल	श्रद्धानिष्ठ श्रावक
54.	श्री	खीमराज सालेचा	बाड़मेर–सूरत	श्रद्धानिष्ठ श्रावक
55.	श्री	कानभाई संघवी	गांधीधाम (कच्छ)	श्रद्धानिष्ठ श्रावक
56.	श्री	करणलाल चिप्पड़	लावासरदारगढ़–चेन्नई	श्रद्धानिष्ठ श्रावक
57.	श्री	कन्हैयालाल भंसाली	नोखा–बरपेटा	श्रद्धानिष्ठ श्रावक
58.	श्री	किशनलाल डागलिया	कोशीवाड़ा–मुम्बई	श्रद्धानिष्ठ श्रावक
59.	स्व.	लाभचन्द जी सुराणा	सादुलपुर–कोलकाता	श्रद्धानिष्ठ श्रावक
60.	श्री	लालचन्द कोठारी	गंगाशहर	श्रद्धानिष्ठ श्रावक

क्रम सं.	उपसर्ग	नाम	स्थान	अलंकरण
61.	श्री	मेगराज महनोत	उदासर–भीलवाड़ा	श्रद्धानिष्ठ श्रावक
62.	श्री	मानमल नाहटा	बालोतरा	श्रद्धानिष्ठ श्रावक
63.	श्री	महेन्द्र कुमार तातेड़	जसोल	श्रद्धानिष्ठ श्रावक
64.	स्व.	मोहनलाल जी सेठिया	देवगढ़ मदारिया	श्रद्धानिष्ठ श्रावक
65.	श्री	मोहनलाल गोगड़	बालोतरा	श्रद्धानिष्ठ श्रावक
66.	श्री	मोतीलाल एम. गांधी मेहता	जसोल	श्रद्धानिष्ठ श्रावक
67.	श्री	मोतीलाल एस. गांधी मेहता	जसोल	श्रद्धानिष्ठ श्रावक
68.	श्री	मांगीलाल बालड़	भीमड़ा	श्रद्धानिष्ठ श्रावक
69.	श्री	मांगीलाल छाजेड़	गंगाशहर	श्रद्धानिष्ठ श्रावक
70.	श्री	मांगीलाल झाबक	पिथास–सूरत	श्रद्धानिष्ठ श्रावक
71.	श्री	मांगीलाल सिंघवी	असाड़ा	श्रद्धानिष्ठ श्रावक
72.	श्री	माणकचन्द बैद	सरदारशहर	श्रद्धानिष्ठ श्रावक
73.	श्री	माणकचन्द सालेचा	जसोल	श्रद्धानिष्ठ श्रावक
74.	श्री	मिठालाल सालेचा	जसोल–मुम्बई	श्रद्धानिष्ठ श्रावक
75.	श्री	मीठालाल ओस्तवाल	मिंजूर	श्रद्धानिष्ठ श्रावक
76.	श्री	मूलचन्द चौपड़ा	गंगाशहर	श्रद्धानिष्ठ श्रावक
77.	श्री	मुकेश कुमार जैन	तोशाम	श्रद्धानिष्ठ श्रावक
78.	श्री	निर्मल कोठारी	लाडनूं–अहमदाबाद	श्रद्धानिष्ठ श्रावक
79.	स्व.	नानालाल खिमावत	उदयपुर	श्रद्धानिष्ठ श्रावक
80.	स्व.	ओमप्रकाश जैन	भिवानी	श्रद्धानिष्ठ श्रावक
81.	श्री	पारसमल संकलेचा	पचपदरा–अहमदाबाद	श्रद्धानिष्ठ श्रावक
82.	श्री	पुखराज दक	कूकरखेड़ा–भीम	श्रद्धानिष्ठ श्रावक
83.	श्री	पूनमचन्द डागा	सरदारशहर–चेन्नई	श्रद्धानिष्ठ श्रावक
84.	स्व.	आर. चांदमल डूंगरवाल	दिवेर–चेन्नई	श्रद्धानिष्ठ श्रावक
85.	स्व.	रामेश्वरदास जी जैन	हिसार–करनाल	श्रद्धानिष्ठ श्रावक
86.	स्व.	राजमल जी सिंघवी	आसाहोली	श्रद्धानिष्ठ श्रावक
87.	श्री	राजकरण छलानी	गंगाशहर	श्रद्धानिष्ठ श्रावक
88.	स्व.	रणजीतमल जी गादिया	पेटलावद–इन्दौर	श्रद्धानिष्ठ श्रावक
89.	श्री	रणजीतसिंह चौरड़िया	सुजानगढ़–कोलकाता	श्रद्धानिष्ठ श्रावक
90.	श्री	राणमल छाजेड़	जसोल	श्रद्धानिष्ठ श्रावक
91.	श्री	रतनलाल सुराणा	नोखा–जलगांव	श्रद्धानिष्ठ श्रावक
92.	श्री	सवाईचन्द कोचर	फलसूण्ड	श्रद्धानिष्ठ श्रावक
93.	श्री	स्वरूपचन्द कोचर	फलसूण्ड	श्रद्धानिष्ठ श्रावक
94.	श्री	सोहनलाल बाफणा	राशमी	श्रद्धानिष्ठ श्रावक
95.	श्री	सूरजकरण दुगड़	सरदारशहर	श्रद्धानिष्ठ श्रावक
96.	श्री	सूरजमल घोषल	राजलदेसर	श्रद्धानिष्ठ श्रावक
97.	श्री	सुरेश कुमार भंसाली	जसोल	श्रद्धानिष्ठ श्रावक
98.	श्री	सुमेरमल पारख	चूरू–चेन्नई	श्रद्धानिष्ठ श्रावक
99.	स्व.	तोलाराम जी बोथरा	श्रीडूंगरगढ़	श्रद्धानिष्ठ श्रावक
100.	श्री	तोलाराम सामसुखा	गंगाशहर	श्रद्धानिष्ठ श्रावक

क्रम सं.	उपसर्ग	नाम	स्थान	अलंकरण
101.	श्री	वीरचन्द लोढ़ा	अमलमेर	श्रद्धानिष्ठ श्रावक
102.	श्री	लक्ष्मीनारायण जैन	टिटलागढ़—नवरंगपुर	श्रद्धानिष्ठ युवा श्रावक
103.	श्रीमती	अमराव देवी घोड़ावत	लाडनूं—दिल्ली	श्रद्धा की प्रतिमूर्ति
104.	श्रीमती	आशा देवी बैद	गंगाशहर	श्रद्धा की प्रतिमूर्ति
105.	श्रीमती	अंणची देवी गांधी मेहता	जसोल	श्रद्धा की प्रतिमूर्ति
106.	श्रीमती	अणसी देवी ढ़ेलड़िया	जसोल—गांधीधाम (कच्छ)	श्रद्धा की प्रतिमूर्ति
107.	श्रीमती	अणछी देवी छाजेड़	कवास—बालोतरा	श्रद्धा की प्रतिमूर्ति
108.	स्व.	अणची देवी बैंगानी	बीदासर—कोलकाता	श्रद्धा की प्रतिमूर्ति
109.	श्रीमती	अणसी देवी वडेरा	टापरा	श्रद्धा की प्रतिमूर्ति
110.	श्रीमती	अणसी देवी गोलेच्छा	जसोल	श्रद्धा की प्रतिमूर्ति
111.	श्रीमती	अनीतादेवी सिंघवी	असाड़ा	श्रद्धा की प्रतिमूर्ति
112.	श्रीमती	बादामी देवी बोकड़िया	जसोल—हिरियूर	श्रद्धा की प्रतिमूर्ति
113.	श्रीमती	बसंती देवी मेहता	आमेट—मुम्बई	श्रद्धा की प्रतिमूर्ति
114.	स्व.	बक्षु बाई विनायकीया	मजल—जोधपुर	श्रद्धा की प्रतिमूर्ति
115.	श्रीमती	बक्सुदेवी बालड़	बायतू—पाली	श्रद्धा की प्रतिमूर्ति
116.	स्व.	बुग्गी देवी डागा	सरदारशहर—बेंगलोर	श्रद्धा की प्रतिमूर्ति
117.	श्रीमती	बेबीदेवी सालेचा	बाड़मेर—सूरत	श्रद्धा की प्रतिमूर्ति
118.	श्रीमती	भीखी देवी चौपड़ा	पचपदरा	श्रद्धा की प्रतिमूर्ति
119.	श्रीमती	भुरीबाई लोढ़ा	आमेट—मुम्बई	श्रद्धा की प्रतिमूर्ति
120.	स्व.	भंवरी देवी बोथरा	गंगाशहर	श्रद्धा की प्रतिमूर्ति
121.	श्रीमती	भंवरीदेवी चोरड़िया	नोखा—जलगांव	श्रद्धा की प्रतिमूर्ति
122.	श्रीमती	भंवरी देवी तलेसरा	जसोल—सूरत	श्रद्धा की प्रतिमूर्ति
123.	श्रीमती	चन्दादेवी रांका	बालोतरा	श्रद्धा की प्रतिमूर्ति
124.	स्व.	चुकी देवी तलेसरा	बालोतरा	श्रद्धा की प्रतिमूर्ति
125.	श्रीमती	चुकी देवी चौपड़ा	पचपदरा	श्रद्धा की प्रतिमूर्ति
126.	स्व.	चम्पादेवी हिरण	आमेट—मुम्बई	श्रद्धा की प्रतिमूर्ति
127.	स्व.	चंपा बहिन संघवी जैन	वाव	श्रद्धा की प्रतिमूर्ति
128.	श्रीमती	चन्द्राणी जैन	फतेहाबाद	श्रद्धा की प्रतिमूर्ति
129.	स्व.	छाऊ देवी खाब्या	भीलवाड़ा—अहमदाबाद	श्रद्धा की प्रतिमूर्ति
130.	श्रीमती	छगनी देवी कोचर	फलसूण्ड	श्रद्धा की प्रतिमूर्ति
131.	श्रीमती	छायादेवी बोथरा	बीदासर—कोलकाता	श्रद्धा की प्रतिमूर्ति
132.	श्रीमती	देवी बाई गोलेच्छा	बाड़मेर—सूरत	श्रद्धा की प्रतिमूर्ति
133.	स्व.	दयावन्ती जैन	जैतों	श्रद्धा की प्रतिमूर्ति
134.	स्व.	धापु देवी दुगड़	सरदारशहर—अहमदाबाद	श्रद्धा की प्रतिमूर्ति
135.	श्रीमती	गौरांदेवी छाजेड़	रासीसर—जलगांव	श्रद्धा की प्रतिमूर्ति
136.	स्व.	गट्टू देवी सिंघी	श्रीडूंगरगढ़—बेंगलोर	श्रद्धा की प्रतिमूर्ति
137.	श्रीमती	इन्द्रा देवी सालेचा	बालोतरा—अहमदाबाद	श्रद्धा की प्रतिमूर्ति
138.	श्रीमती	ईचु देवी बैद	हैदराबाद	श्रद्धा की प्रतिमूर्ति
139.	श्रीमती	जेठबाई सिसोदिया	रायपुर—मुम्बई	श्रद्धा की प्रतिमूर्ति
140.	श्रीमती	जमना देवी बालड़	बायतू—बालोतरा	श्रद्धा की प्रतिमूर्ति

क्रम सं.	उपसर्ग	नाम	स्थान	अलंकरण
141.	श्रीमती	जसोदा देवी भंसाली	जसोल	श्रद्धा की प्रतिमूर्ति
142.	श्रीमती	जतनदेवी छलानी	गंगाशहर	श्रद्धा की प्रतिमूर्ति
143.	स्व.	झंकार बाई संचेती	भेसाणा–सिकन्दराबाद	श्रद्धा की प्रतिमूर्ति
144.	श्रीमती	कान्ता देवी बड़ोला	राजसमन्द	श्रद्धा की प्रतिमूर्ति
145.	स्व.	कमला देवी चौपड़ा	पचपदरा–जोधपुर	श्रद्धा की प्रतिमूर्ति
146.	श्रीमती	कमला देवी गोठी	टापरा	श्रद्धा की प्रतिमूर्ति
147.	श्रीमती	कमला देवी गोठी	सरदारशहर–जयपुर	श्रद्धा की प्रतिमूर्ति
148.	श्रीमती	कमला देवी बोकड़िया	जसोल	श्रद्धा की प्रतिमूर्ति
149.	श्रीमती	कमला देवी गुप्ता (पोरवाल)	उदयपुर	श्रद्धा की प्रतिमूर्ति
150.	श्रीमती	कमला देवी धोका	पाली	श्रद्धा की प्रतिमूर्ति
151.	श्रीमती	कमलादेवी भंसाली	नोखा–बरपेटा	श्रद्धा की प्रतिमूर्ति
152.	श्रीमती	कमला देवी ओस्तवाल	बालोतरा	श्रद्धा की प्रतिमूर्ति
153.	श्रीमती	कमला बाई मेहता	मजेरा–मुम्बई	श्रद्धा की प्रतिमूर्ति
154.	श्रीमती	कमलेशदेवी जैन	तोशाम	श्रद्धा की प्रतिमूर्ति
155.	श्रीमती	केसरदेवी बालड़	भीमड़ा	श्रद्धा की प्रतिमूर्ति
156.	श्रीमती	कैलाश देवी ढिलीवाल	चित्तौड़गढ़	श्रद्धा की प्रतिमूर्ति
157.	श्रीमती	कोशल्या देवी सुराणा	नोखा–जलगांव	श्रद्धा की प्रतिमूर्ति
158.	श्रीमती	कंचन देवी सुराना	तारानगर–कोलकाता	श्रद्धा की प्रतिमूर्ति
159.	श्रीमती	कंचनबाई गेलड़ा	बोरावड़–शहादा	श्रद्धा की प्रतिमूर्ति
160.	श्रीमती	किरणदेवी धोका	पाली	श्रद्धा की प्रतिमूर्ति
161.	श्रीमती	किरणदेवी कोठारी	गंगाशहर	श्रद्धा की प्रतिमूर्ति
162.	श्रीमती	कुसुम चोरड़िया	सुजानगढ़–कोलकाता	श्रद्धा की प्रतिमूर्ति
163.	श्रीमती	खमा देवी जीरावला	समदड़ी–सूरत	श्रद्धा की प्रतिमूर्ति
164.	श्रीमती	लक्ष्मी देवी कोठारी	रींछेड़–मुम्बई	श्रद्धा की प्रतिमूर्ति
165.	स्व.	लक्ष्मी देवी हिंगड़	आमेट	श्रद्धा की प्रतिमूर्ति
166.	स्व.	लक्ष्मीदेवी कोठारी	बीकानेर–सूरत	श्रद्धा की प्रतिमूर्ति
167.	श्रीमती	लाड देवी बाफना	भाणा–मुम्बई	श्रद्धा की प्रतिमूर्ति
168.	श्रीमती	लुणी देवी तातेड़ (कोठारी)	जसोल–मदुरै	श्रद्धा की प्रतिमूर्ति
169.	श्रीमती	लीला देवी सालेचा	जसोल–मुम्बई	श्रद्धा की प्रतिमूर्ति
170.	स्व.	लीला देवी भंसाली	अहमदाबाद	श्रद्धा की प्रतिमूर्ति
171.	श्रीमती	लीलाबाई नाहटा	गंगाशहर	श्रद्धा की प्रतिमूर्ति
172.	श्रीमती	माणकदेवी लूणिया	तारानगर	श्रद्धा की प्रतिमूर्ति
173.	स्व.	मणीबहन दोसी	फतेहगढ़–भूज	श्रद्धा की प्रतिमूर्ति
174.	श्रीमती	मणीबहन संघवी	गांधीधाम (कच्छ)	श्रद्धा की प्रतिमूर्ति
175.	श्रीमती	मांगी देवी भंसाली	बालोतरा– अहमदाबाद	श्रद्धा की प्रतिमूर्ति
176.	श्रीमती	मांगी देवी ढेलड़िया	समदड़ी –मुम्बई	श्रद्धा की प्रतिमूर्ति
177.	श्रीमती	मांगीदेवी पालगोता	टापरा–बालोतरा	श्रद्धा की प्रतिमूर्ति
178.	श्रीमती	मनोहरीदेवी आंचलिया	गंगाशहर	श्रद्धा की प्रतिमूर्ति
179.	श्रीमती	मनोहरी देवी कोठारी	लाडनूं–अहमदाबाद	श्रद्धा की प्रतिमूर्ति
180.	श्रीमती	मोहिनी देवी जीरावला	समदड़ी	श्रद्धा की प्रतिमूर्ति

क्रम सं.	उपसर्ग	नाम	स्थान	अलंकरण
181.	स्व.	मोहनी देवी कोटेचा	बोरावड़	श्रद्धा की प्रतिमूर्ति
182.	श्रीमती	मोहिनी देवी पारख	सिरसा–आगरा	श्रद्धा की प्रतिमूर्ति
183.	श्रीमती	मोहन देवी चावत	राजाजी का करेड़ा	श्रद्धा की प्रतिमूर्ति
184.	श्रीमती	मोहनी देवी संकलेचा	जसोल	श्रद्धा की प्रतिमूर्ति
185.	श्रीमती	मोहनी देवी गांधी मेहता	जसोल	श्रद्धा की प्रतिमूर्ति
186.	श्रीमती	मोती बाई डागलिया	कोशीवाड़ा–मुम्बई	श्रद्धा की प्रतिमूर्ति
187.	श्रीमती	मीना डागलिया	कोशीवाड़ा–मुम्बई	श्रद्धा की प्रतिमूर्ति
188.	श्रीमती	मंजुदेवी गौतमचंद भंसाली	जसोल–मुम्बई	श्रद्धा की प्रतिमूर्ति
189.	श्रीमती	मैना देवी सेठिया	शादुलपुर–शिलौंग	श्रद्धा की प्रतिमूर्ति
190.	श्रीमती	मैनादेवी डागा	सरदारशहर–चेन्नई	श्रद्धा की प्रतिमूर्ति
191.	श्रीमती	मीरादेवी चौपड़ा	पारलू–बालोतरा	श्रद्धा की प्रतिमूर्ति
192.	श्रीमती	मीरादेवी बैद	गंगाशहर–दिल्ली	श्रद्धा की प्रतिमूर्ति
193.	श्रीमती	मुली देवी वडेरा	जसोल	श्रद्धा की प्रतिमूर्ति
194.	श्रीमती	नारायणी देवी कोचर	फलसूण्ड	श्रद्धा की प्रतिमूर्ति
195.	स्व.	निर्मला देवी जैन	मुजफ्फरनगर	श्रद्धा की प्रतिमूर्ति
196.	स्व.	नारंगी देवी गादिया	राणी स्टेशन–बेंगलुरू	श्रद्धा की प्रतिमूर्ति
197.	श्रीमती	पारसी देवी बांठिया	पाली	श्रद्धा की प्रतिमूर्ति
198.	श्रीमती	पानी देवी वडेरा	बालोतरा	श्रद्धा की प्रतिमूर्ति
199.	श्रीमती	पानी बाई गादिया	रामसिंहजी का गुड़ा–चिकमंगलुर	श्रद्धा की प्रतिमूर्ति
200.	श्रीमती	पानीदेवी सुराणा	रासीसर	श्रद्धा की प्रतिमूर्ति
201.	श्रीमती	पुष्पा देवी सालेचा	जसोल	श्रद्धा की प्रतिमूर्ति
202.	श्रीमती	पुष्पादेवी चौपड़ा	गंगाशहर	श्रद्धा की प्रतिमूर्ति
203.	श्रीमती	पुष्पादेवी लोढ़ा	अमलमेर	श्रद्धा की प्रतिमूर्ति
204.	श्रीमती	प्यारी देवी माण्डोत	जसोल	श्रद्धा की प्रतिमूर्ति
205.	श्रीमती	पिंकी बोथरा	बरपेटा रोड़	श्रद्धा की प्रतिमूर्ति
206.	श्रीमती	रेंवतीदेवी छाजेड़	गंगाशहर	श्रद्धा की प्रतिमूर्ति
207.	श्रीमती	रेशमीदेवी संकलेचा	पाली	श्रद्धा की प्रतिमूर्ति
208.	श्रीमती	रेशमी देवी संचेती	मोमासर	श्रद्धा की प्रतिमूर्ति
209.	स्व.	रतनी देवी बरमेचा	तारानगर–अहमदाबाद	श्रद्धा की प्रतिमूर्ति
210.	श्रीमती	सरोज देवी तातेड़	जसोल	श्रद्धा की प्रतिमूर्ति
211.	श्रीमती	सरजु देवी सालेचा	जसोल	श्रद्धा की प्रतिमूर्ति
212.	श्रीमती	सन्तोष देवी गुगलिया	लसाड़िया (खुर्द)–अहमदाबाद	श्रद्धा की प्रतिमूर्ति
213.	श्रीमती	संतोकी देवी बैंगानी	बीदासर–गाजियाबाद	श्रद्धा की प्रतिमूर्ति
214.	श्रीमती	सन्तोष देवी मुथा	ब्यावर–चेन्नई–दुबई .	श्रद्धा की प्रतिमूर्ति
215.	श्रीमती	संगीता देवी श्यामसुखा	सरदारशहर	श्रद्धा की प्रतिमूर्ति
216.	श्रीमती	सुनीता कोठारी	लाडनूं–अहमदाबाद	श्रद्धा की प्रतिमूर्ति
217.	श्रीमती	सुमन देवी जैन	सूरत	श्रद्धा की प्रतिमूर्ति
218.	श्रीमती	सुन्दर देवी जीरावला	समदड़ी–कोप्पल	श्रद्धा की प्रतिमूर्ति
219.	स्व.	सुन्दर देवी चोरड़िया	छापर–कोलकाता	श्रद्धा की प्रतिमूर्ति
220.	श्रीमती	सुन्दर देवी वैदमुथा	बालोतरा	श्रद्धा की प्रतिमूर्ति

क्रम सं.	उपसर्ग	नाम	स्थान	अलंकरण
221.	श्रीमती	सुन्दर देवी तातेड़	जसोल	श्रद्धा की प्रतिमूर्ति
222.	स्व.	सुंदरदेवी पालगोता	टापरा–सूरत	श्रद्धा की प्रतिमूर्ति
223.	श्रीमती	सुशीला देवी भंसाली	जसोल	श्रद्धा की प्रतिमूर्ति
224.	श्रीमती	सुशीला देवी वडेरा	जसोल	श्रद्धा की प्रतिमूर्ति
225.	श्रीमती	सुशीला देवी दुगड़	सरदारशहर	श्रद्धा की प्रतिमूर्ति
226.	श्रीमती	सुबटी देवी जीरावला	असाड़ा	श्रद्धा की प्रतिमूर्ति
227.	श्रीमती	सुबटी देवी ढ़ेलड़ीया	जसोल–गांधीधाम (कच्छ)	श्रद्धा की प्रतिमूर्ति
228.	श्रीमती	सुआदेवी सुराणा	पारलू–अहमदाबाद	श्रद्धा की प्रतिमूर्ति
229.	श्रीमती	सुआ देवी कोचर	फलसूण्ड	श्रद्धा की प्रतिमूर्ति
230.	स्व.	सुमेरी देवी आंचलिया	गंगाशहर–कोटा	श्रद्धा की प्रतिमूर्ति
231.	श्रीमती	सोनादेवी दुगड़	सरदारशहर	श्रद्धा की प्रतिमूर्ति
232.	श्रीमती	सोसरबाई बाबेल	मुरोली–चितौड़गढ़	श्रद्धा की प्रतिमूर्ति
233.	श्रीमती	सोसरबाई ओस्तवाल	गिलुण्ड	श्रद्धा की प्रतिमूर्ति
234.	श्रीमती	सीरु देवी सिंगी	रतनगढ़	श्रद्धा की प्रतिमूर्ति
235.	श्रीमती	सीरु देवी नौलखा	सरदारशहर–सिकन्दराबाद	श्रद्धा की प्रतिमूर्ति
236.	श्रीमती	शांती बाई सेमलानी	रानी–मुम्बई	श्रद्धा की प्रतिमूर्ति
237.	श्रीमती	शांती देवी संकलेचा	पचपदरा–अहमदाबाद	श्रद्धा की प्रतिमूर्ति
238.	श्रीमती	शान्ति देवी धोका	पाली	श्रद्धा की प्रतिमूर्ति
239.	श्रीमती	शान्तिदेवी ओस्तवाल	मिंजूर	श्रद्धा की प्रतिमूर्ति
240.	श्रीमती	उमराव देवी बागरेचा	जसोल	श्रद्धा की प्रतिमूर्ति
241.	श्रीमती	उमराव देवी ढ़ेलड़िया	जसोल	श्रद्धा की प्रतिमूर्ति
242.	श्रीमती	वदामीदेवी (मीठी मां) बाफना	बालोतरा	श्रद्धा की प्रतिमूर्ति
243.	स्व.	विदामी देवी वडेरा	टापरा	श्रद्धा की प्रतिमूर्ति
244.	श्रीमती	विदामबाई गदिया	रामसिंह का गुड़ा–चिकमंगलुर	श्रद्धा की प्रतिमूर्ति
245.	श्रीमती	विजया देवी कुंडलिया	सरदारशहर–सिलीगुड़ी	श्रद्धा की प्रतिमूर्ति
246.	श्रीमती	विमला देवी चौधरी	आमेट–मुम्बई	श्रद्धा की प्रतिमूर्ति
247.	श्रीमती	विमला देवी भंसाली	जसोल	श्रद्धा की प्रतिमूर्ति
248.	श्रीमती	विमलदेवी जैन	फतेहाबाद	श्रद्धा की प्रतिमूर्ति
249.	श्रीमती	वरदीबाई बाबेल	ठीकरवास कलां–चेन्नई	श्रद्धा की प्रतिमूर्ति
250.	श्री	उग्रसेन जैन	फतेहाबाद	कल्याण मित्र
251.	श्रीमती	कार्ला ग्रिट्स (करुणा)	जर्मनी	कल्याण मित्रा

जैन श्वेताम्बर तेरापंथी महासभा

(ISO 9001 : 2008 9001 : 2008 प्रमाणित)

3, पोर्चुगीज चर्च स्ट्रीट, कोलकाता 700001

दूरभाष : (033) 22357956, 22343598, फैक्स : (033) 22343666

बिनोदकुमार चोरड़िया, जैन श्वेताम्बर तेरापंथी महासभा, 3, पोर्चुगीज चर्च स्ट्रीट, कोलकाता-1 के लिए जैन भारती कार्यालय, गंगाशहर, बीकानेर (राज.) से प्रकाशित एवं प्रेषित और सांखला प्रिंटर्स, बीकानेर द्वारा मुद्रित।

With best compliments from :

SMT MACHINES

INFRASTRUCTURE

- In-House third party inspection facility.
- SMT has three manufacturing units.
- SMT has more than 150 Heavy and Precise machine out of which about 60 machines are imported from Europe, efforts to deliver the best and on time.
- All the designing is done on 3D Autodesk Inventor software's by our experienced engineers
- SMT has taken initiative to provide Operating and Instruction Manual with most of the machines integrated by Oracles ERP Software, dedicating ourselves to professionalism committed for the Best of the After Sale Services and lot more.

Turnkey Project Experts in Total Steel Making

Apart from regular products, we provides-Certified TMT Quenching Box, Automatic and Skid Type transfer cooling Beds, Twin Channels, Eden Borne Type Coiler, Flying & Dividing Shears, Cobble Shears, Section Straightening Machine, Repeaters Roller Conyeyors, Tilting.& Y Table, Snap Shears etc.

SMT

SMT MACHINES (INDIA) LIMITED

An ISO 9001:2000 Co., An ISO 14001 : 2004 Co., An ISO 18001: 2007 Co.
D & B Ranked SE 2A Unit, Govt of India Recognized Export House
G.T.Road Near Industrial Focal Point, Mandi Gobindgarh - 147301,
INDIA, Mob : + 91-93577 55555
Tel : + 91- 1765 256337, 257742, Fax : 255199
e- mail : info@smtmachinesindia.org, info@smtsteelmills.com
Web : www.smtmachinesindia.org. www.smtsteelmills.com

Fine Strokes (09866291098)

ACHARYA SRI KAILASSAGARSURI GYANMANDIR
SRI MAHAVIR JAIN ARADHANA KENDRA
Koba, Gandhinagar-382 009
Phone : (079) 23276252, 23276204-0

जैन भारती, जनवरी, 2013 ■ प्रेषण दिनांक 15 जनवरी, 2013
भारत सरकार पं. सं. : 2643/57 ■ डाक पंजीयन संख्या : बीकानेर/048/2012-2014

शासनसेवी बुद्धमल दुगड़
सुरेन्द्रकुमार, तुलसीकुमार, कमलकुमार दुगड़
(कल्याण मित्र दुगड़ परिवार)

के.बी.डी. फाउण्डेशन

बुद्धमल सुरेन्द्र दुगड़ फाउण्डेशन

बुद्धमल तुलसी दुगड़ फाउण्डेशन

बीएमडी कमल दुगड़ फाउण्डेशन

201/504, वैष्णो चेंबर, 6, बेब्रॉर्न रोड, कोलकाता 700001
फोन : 22254103/4889

प्रेषक : जैन श्वेताम्बर तेरापंथी महासभा, तेरापंथ भवन, महावीर चौक, गंगाशहर, बीकानेर 334401 • फोन : 0151-2270779

नोट : आपके पते में कोई कमी, अशुद्धि या पिन-कोड नहीं हो तो कृपया सूचित करें। ग्राहक संख्या अवश्य लिखें।